राष्ट्रीय स्वास्थ्य सभा-2 की ओर

पुस्तिका - 3

महिलाओं का स्वास्थ्य

राष्ट्रीय संयोजन समिति

जन स्वास्थ्य अभियान

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सभा-2 की ओर

पुस्तिका - 3

महिलाओं का स्वास्थ्य

हिन्दी अनुवाद

के.बी. सिंह

राष्ट्रीय संयोजन समिति

जन स्वास्थ्य अभियान

महिलाओं का स्वास्थ्य
पहला संस्करण : अक्टूबर 2006

तैयारी एवं प्रकाशन
राष्ट्रीय संयोजन समिति, जन स्वास्थ्य अभियान

कृतज्ञता ज्ञापन
इस पुस्तक की तैयारी, जन स्वास्थ्य अभियान के लिए,
महिला एवं स्वास्थ्य पर काम करने वाले सामा संसाधन समूह, नई दिल्ली द्वारा;
चिकित्सा एवं महिला स्वास्थ्य पर अध्यायों की लेखिका डा. मीरा शिवा

हिन्दी अनुवाद
के.बी.सिंह
ज्ञान विज्ञान समिति, उत्तर प्रदेश

चित्रांकन
हेल्थ फार आल, नाउ!; द पीपुलस् हेल्थ सोर्सबुक, दूसरा संस्करण, 2004;
एनसीसी, जन स्वास्थ्य अभियान एवं यूएनडीपी

लेआउट एवं डिजाइन
राजीव चौधरी
भावना सुमन एवं निवेदिता डेका, जन स्वास्थ्य अभियान

मुद्रण
क्रियेटिव प्रिंटर्स, लखनऊ
फोन : 9839007834

राष्ट्रीय समन्वय समिति सदस्य

- ❒ अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क (AIPSN)
- ❒ अखिल भारतीय ड्रग एक्शन नेटवर्क (AIDAN)
- ❒ एशियन कम्युनिटी हेल्थ एक्शन नेटवर्क (ACHAN)
- ❒ अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति (AIDWA)
- ❒ एसोसिएशन फार इंडियाज डेवलेपमेंट (AID INDIA)
- ❒ भारत ज्ञान विज्ञान समिति (BGVS)
- ❒ ब्रेस्टफीडिंग प्रोमोशन नेटवर्क ऑफ इण्डिया(BPNI)
- ❒ कैथोलिक हेल्थ एसोसिएशन ऑफ इण्डिया (CHAI)
- ❒ सेंटर फार कम्युनिटी हेल्थ एण्ड सोशल, मेडिसिन जवाहन लाल नेहरू विश्वविद्यालय
- ❒ सेंटर फार हेल्थ इन्क्वायरी इन टू हेल्थ एण्ड अलाईड थीम्स (CEHAT)
- ❒ क्रिश्चियन मेडिकल एसोसिएशन ऑफ इण्डिया (CMAI)
- ❒ सोसाइटी फार कम्युनिटी हेल्थ अवेयरनेस, रिसर्च एण्ड एक्शन (SOCHARA)
- ❒ फोरम फार क्रच एण्ड चाइल्ड केयर सर्वेसेस (FORCES)
- ❒ फेडरेशन ऑफ मेडिकल रेप्रिजेंटेटिव एसोसिएशन ऑफ इण्डिया (FMRAI)
- ❒ ज्वाइंट वूमेन्स प्रोग्राम (JNP)
- ❒ मेडिको फ्रेन्ड सर्किल (FMC)
- ❒ नेशनल अलाएंस ऑफ प्यूपिल्स मूवमेंन्ट (NAPM)
- ❒ नेशनल फेडरेशन ऑफ इण्डियन वूमेन (NFIW)
- ❒ नेशनल एसोसिएशन ऑफ वूमेन्स आर्गेनाइजेशन्स (NAWO)
- ❒ रामकृष्ण मिशन
- ❒ वालेन्ट्री हेल्थ एसोसिएशन ऑफ इण्डिया (VHAI)

भागीदारी संस्थाएं

1000 से ज्यादा, स्वास्थ्य सेवा तथा स्वास्थ्य नीति से संबंधित संस्थाएं जो उल्लिखित नेटवर्क के अंदर अथवा बाहर कार्य कर रही हैं, जन स्वास्थ्य अभियान में भागीदार है।

जन स्वास्थ्य अभियान के बारे में

1978 में अल्मा अता में विश्व की सरकारों ने एक साथ आकर अल्मा अता घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए, जिसमें 'सन् 2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य' का वादा किया गया है। हालांकि इस वादे को कभी गंभीरता से नहीं लिया गया और बाद में स्वास्थ्य नीति की चर्चाओं में दरकिनार कर दिया गया।

वर्ष 2000 पहुंचने तक यह स्पष्ट हो चुका था कि पूरे विश्व की सरकारों ने 'सन् 2000 तक सब के लिए स्वास्थ्य' शांति के साथ भुला दिया है। लोगों को इस वादे की याद दिलाने के लिए साबेर, बंगला देश में दिसंबर 2000 में पहली जन स्वास्थ्य असेम्बली का आयोजन किया गया। जन स्वास्थ्य असेम्बली, वैश्विक जन आंदोलनों तथा दूसरे गैर शासकीय सामाजिक संगठनों का एक साथ आकर सबके लिए स्वास्थ्य की शपथ को दोहराना था, ताकि सरकारें इस वादे को गंभीरता से लें। असेम्बली का उद्देश्य वैश्विक घनिष्ठता बढ़ाना, तथा भूमण्डलीकरण के परिप्रेक्ष्य में जन स्वास्थ्य नीतियों को आगे बढ़ाने में कार्यरत जन आंदोलनों तथा संगठनों को साथ में लाना भी था।

राष्ट्रीय नेटवर्क तथा संगठन जो राष्ट्रीय स्वास्थ्य असेम्बली को करने के लिए साथ में आये थे, ने जन स्वास्थ्य अभियान के रूप में, आंदोलन को आगे बढ़ाने तथा निरंतरता देने का निर्णय किया। जन स्वास्थ्य अभियान वैश्विक जन स्वास्थ्य आंदोलन का भारतीय वृत्त है।

चिकित्सकीय उन्नति तथा औसत आयु बढ़ने के बावजूद, भविष्य के स्तर पर लोगों के मध्य स्वास्थ्य के स्तर को लेकर बढ़ती हुई भिन्नता विचलित करती है। सभी प्रभावों सहित चिरस्थायी गरीबी, एचआईवी एड्स के साथ संक्रामक बीमारियों का पुर्नजागरण एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य ढांचे के कमजोर होने से स्वास्थ्य के क्षेत्र में पूर्व में प्राप्त उपलब्धियां खात्मे की ओर जा रही हैं। यह परिवर्तन आय में बढ़ती गैर बराबरी, सार्वजनिक सेवाओं तक पहुंच में कमी, साथ ही लैंगिक एवं नस्लगत गैरबराबरी से जुड़ा है। पारंपरिक ज्ञान की व्यवस्था एवं खतरे में है।

ये रुझान, गैर बराबरीपूर्ण वैश्विक अर्थव्यवस्था का ढांचा, जो ढांचागत समायोजन की नीतियां, दक्षिण की ज्यादा ऋणग्रस्तता, गैर ईमानदारीपूर्ण विश्व व्यपार के इंतजाम तथा अनियंत्रित अंदाजा वित्त - सभी जो गैर बराबरीपूर्ण भूमंडलीकरण की ओर जा रहे हैं, के परिणाम हैं। कई देशों में ये दिक्कतें सरकारों एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों

के मध्य तालमेल की कमी, तथा स्थिर घटते हुए सार्वजनिक स्वास्थ्य बजट के कारण और बढ़ गई है। स्वास्थ्य क्षेत्र के भीतर, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा नीतियों को लागू करने में असफलता, जो मूल रूप में सोची गई थी, ने विश्व स्वास्थ्य संकट को बढ़ा दिया है। ये कमियां निम्न हैं -

- समग्र राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं दवा नीतियों के उद्देश्य, जो व्यापक सामाजिक नीतियां में शामिल हैं, से पीछे रहना।
- स्वास्थ्य समस्याओं की अंतर विभागीय प्रकृति को समझ पाने की कमी तथा स्वास्थ्य को समाज के सभी हिस्सों की प्राथमिकता बनाने में असफलता।
- उनके अपने स्वास्थ्य के विकास के लिए समाज की भागीदारी बढ़ाने एवं उपयुक्त शिरकत कराने में असफलता।
- राज्य की सभी स्तरों पर घटती जिम्मेदारी के फलस्वरूप व्यापक एवं आमतौर पर गैर बराबरीपूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण की नीतियां।
- संकीर्ण, ऊपर से नीचे की ओर, स्वास्थ्य पर तकनीकी केन्द्रित नजरिया तथा स्वास्थ्य को मानवीय अधिकार के स्थान पर सामग्री के रूप में देखने का नजरिया।
- प्रथम जन स्वास्थ्य असेम्बली की प्रक्रिया के बाद इस परिप्रेक्ष्य में जन स्वास्थ्य अभियान में शामिल संस्थाएं साथ में आईं एवं स्वास्थ्य आंदोलन की शुरूआत की। कुछ उद्देश्य जो इस समन्वय समूह ने अपने लिए निर्धारित किए नीचे दिये गये हैं (जन स्वास्थ्य घोषणा पत्र में विस्तृत रूप से दिये गए हैं।)
- जन स्वास्थ्य अभियान का लक्ष्य गैर बराबरीपूर्ण भूमंडलीकरण की नीतियों का भारतीय जनता, विशेष रूप से गरीबों पर पड़ने वाले प्रभाव की ओर, लोगों का ध्यान आकर्षित करना होगा।

जन स्वास्थ्य अभियान का लक्ष्य वर्ष, 2000 के 'सबके लिए स्वास्थ्य 2000 तक' की शपथ पूर्ण किए बिना निकल जाने की ओर जनता का ध्यान आकर्षित कराना होगा। यह ऐतिहासिक वादा नए रूप से लेने तथा सबके लिए स्वास्थ्य अभी के नारे के साथ इस प्रकार लिया जायेगा कि स्वास्थ्य सेवा के अधिकार को मूलभूत अधिकारों के रूप में स्वास्थ्य और बराबरीपूर्ण विकास को स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय नीति

बनाने में प्राथमिकता के रूप में स्थापित करने की आवश्यकता है, साथ ही प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा को इन प्राथमिकताओं को प्राप्त करने में प्रमुख रणनीति माना जाए।

भारत में भूमंडलीकरण, निजीकरण तथा शासन की कमजोर नियंत्रण प्रणाली के कारण स्वास्थ्य सेवा के बाजारीकरण का रुझान कई गुना बढ़ गया है। अनुचित, अनैतिक तथा शोषणयुक्त चिकित्सकीय तरीके से बढ़ रहे हैं तथा फलफूल रहे हैं। जन स्वास्थ्य अभियान इस बाजारीकरण स्थिति से संघर्ष की आवश्यकता बताता है, साथ ही स्वास्थ्य सेवा के लिए न्यूनतम पैमाने तथा उचित चिकित्सा मार्गदर्शिका बनाना जरूरी है।

भारत के संदर्भ में, ऊपर से निर्देशित, नौकरशाहीपूर्ण, तकनीकी केन्द्रित टुकड़े-टुकड़े में स्वास्थ्य वृद्धि देने में असफल रही है। जन स्वास्थ्य अभियान तुरंत विकेन्द्रीकृत, समन्वित एवं भागीदारीपूर्ण स्वास्थ्य सुविधा को 'जनता का स्वास्थ्य जनता के हाथ' के साथ, बढ़ाने की आवश्यकता को प्रतिपादित करता है।

जन स्वास्थ्य अभियान उन सभी के साथ समन्वय बनाना चाहता है जो जन स्वास्थ्य को बढ़ाने में इच्छुक हों। यह व्यापक प्रकार के जनता के प्रयासों को बढ़ाना चाहता है, जो गरीब तथा वंचित तबकों को संगठित करने में सहायता करें एवं बेहतर स्वास्थ्य तक पहुंच बनाएं, साथ ही स्वास्थ्य समस्याओं के दीर्घकालिक तथा टिकाऊ तरीके बनाने में सहयोग दें। जन स्वास्थ्य अभियान का समन्वय राष्ट्रीय, समन्वय समिति जिसमें देश के 21 जनता के आंदोलन तथा गैर शासकीय संस्थाएं हैं, द्वारा किया जाता है। यह पुस्तिका इस श्रृंखला की राष्ट्रीय समन्वय समिति द्वारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य असेम्बली दो के लिए, प्रकाशित पहली पुस्तक है।

विषय सूची

परिचय 4

भाग 1
महिला स्वास्थ्य के निर्धारक 6

भाग 2
स्वास्थ्य रक्षा स्थिति का आलोचनात्मक विश्लेषण 18

भाग 3
महिला स्वास्थ्य पर प्रभाव 24

भाग 4
स्वास्थ्य नीतियां, महिला स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रम 31

भाग 5
दवायें और महिला स्वास्थ्य 38

परिचय

स्वास्थ्य केवल बीमारियों और इलाज के बारे में नहीं बल्कि बेहतरी की वह स्थिति है जो शारीरिक, मानसिक और सामाजिक तनावों से मुक्त हो। अतः जहां भयंकर गरीबी हो वहां सर्वोत्तम स्वास्थ्य ढांचा भी सुनिश्चित नहीं कर सकता कि लोगों की इस तक पहुंच होगी या वे स्वस्थ रहेंगे। ऐसा इसलिये है क्योंकि अन्य अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक तथा पर्यावरणीय आयाम हैं जो महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं।

प्रदूषित पर्यावरण में एक व्यक्ति का स्वस्थ रहना संभव नहीं है। जब एक परिवार को उसके परिवेश से निकाल/विस्थापित कर दिया जाता है, (और उसका पुनर्वासन नहीं किया जाता) यह उसके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर असर डालता है। जब नीची जाति के या आदिवासी व्यक्ति को लगातार उत्पीड़न का शिकार बनाया जाता है और ऊंची जातियों द्वारा उसके खिलाफ हिंसा होती है, हम उसके स्वस्थ रहने की आशा नहीं कर सकते। इसी तरह जब एक महिला को लगातार कुचला जाता है, उत्पीड़ित किया जाता है परिवार में हिंसा का शिकार बनाया जाता है, या उसके साथ सामूहिक बलात्कार होता है और सांप्रदायिक दंगे में अन्याय किया जाता है, वह स्वस्थ नहीं रह सकती। इसलिये लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाले सभी मुद्दों से स्वास्थ्य को

भारतीय महिलाओं का उत्पीड़न और अपमान उसी समय शुरू हो जाता है जब वह गर्भ में होती हैं। लिंग जांच और कन्या भ्रूण हत्या इस बात के उदाहरण हैं कि महिलाओं को जीने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ता है।

जोड़ना जरूरी है।

महिलाओं का स्वास्थ्य पूरी तरह से उपलब्ध संसाधनों तक महिलाओं की पहुंच से और हमारे समाज में महिलाओं के उत्पादन तथा प्रजनन भूमिकाओं से जुड़ा है। एक तरफ संसाधन अधिकाधिक लोगों खासकर महिलाओं के नियंत्रण से फिसलते जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर वह परिवार और समाज में अधिकाधिक दबाई जा रही है। महिलाओं पर लदे दुहरे बोझ के कारण उनमें दीर्घकालीन कुपोषण, अत्यधिक काम और थकावट हावी रहती है। इसके साथ ही आधुनिक जीवन के तनाव, पर्यावरण क्षरण, बढ़ती असुरक्षा और हिंसा भी जुड़ जाती है।

जीवन स्थितियों, काम के परिवेश और संसाधनों तक हमारी पहुंच एवं उनके नियंत्रण को समझिये और हमारे खिलाफ लगातार किये जाने वाले भेदभाव और हिंसा को, जिससे हम लगातार संघर्ष करती हैं।

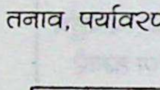

इसके साथ-साथ वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण के कारण आर्थिक पुनर्गठन प्रक्रियाओं ने सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति और उनकी लेनदेन की ताकत को कमजोर किया है। श्रम बाजार में महिलाओं के समय और ऊर्जा पर बहुत दबाव पड़ रहा है, यहां तक कि उनकी मजदूरी कम हो रही है और सहायक सेवाओं की लगभग अनुपस्थिति के कारण महिला स्वास्थ्य पर खराब असर पड़ रहा है। ढांचागत समायोजन कार्यक्रमों और आर्थिक सुधारों के कारण जेंडर संबंधों में असमानता बढ़ी है; स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक सेवाओं पर सार्वजनिक खर्च प्राविध ानों में कमी आई है, औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि घटी है, वार्षिक औसत वृद्धि दर घटी (1980-81 में 7.85 से 1997-98 में 5.95 तक) है, गरीब परिवारों

की खाद्य उपलब्धता में कमी (सार्वजनिक वितरण प्रणाली गरीब परिवारों की जरूरतें पूरी नहीं कर पाती) गरीबों की असली आमदनी में कमी, आदि। और ये सभी गरीब महिलाओं को स्वास्थ्य समस्याओं की जोखिम में डालते हैं।

प्राथमिक स्वास्थ्यरक्षा दृष्टिकोण के आधार पर सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक आयामों की अंतःक्रिया से स्वास्थ्य की व्यापक समझदारी की फौरी आवश्यकता है। इससे महिला स्वास्थ्य समस्याओं को जेंडर दृष्टिकोण से अधिक समग्र रूप से समझने तथा रोग निरोधक, स्वास्थ्य संवर्द्धक और चिकित्सकीय देखभाल करने में मदद मिलेगी।

यह महत्वपूर्ण है कि स्वास्थ्य व्यवस्था की सीमाओं और इसके संदर्भ में महिला स्वास्थ्य अधिकारों तथा मूलाधिकार के तौर पर स्वास्थ्यरक्षा पर विचार करने से पहले, महिला स्वास्थ्य के स्तर और इसे निर्धारित करने वाले कुछ आयामों पर विचार किया जाय।

भाग 1

महिला स्वास्थ्य के निर्धारक

गरीबी एवं भौगोलिक स्थिति तथा जाति, जेंडर, लैंगिकता, विकलांगता आदि पर आधारित सामाजिक बहिष्करण; काम, आवास, परिवेश, शिक्षा, आदि आयामों के साथ निकट अंतःक्रिया द्वारा महिला स्वास्थ्य को निर्धारित करते हैं। हालांकि इनमें से कुछ आयाम आम जनसंख्या को भी प्रभावित करते हैं पर महिलायें समाज में अपने निम्न स्तर के कारण उनको अलग तरह से अनुभव करती हैं। अतः यह समझना महत्वपूर्ण है कि महिलाओं तथा उनकी स्वास्थ्य स्थितियों पर इनका प्रभाव किस तरह पड़ता है। संकुचित जैव-चिकित्सकीय दृष्टिकोण

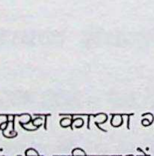

अपनाने के बजाय, महिला स्वास्थ्य को समग्रता से समझने के लिए उनके सामाजिक माहौल और जीवन अनुभवों के कुल जोड़ को देखना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस भाग में महिलाओं के काम, आवास, भोजन-पानी तथा अन्य संसाधनों तक पहुंच के संदर्भ में, महिला जीवन को देखने का प्रयास किया गया है।

गरीबी

अधिकांश भारतीय जनसंख्या के खराब स्वास्थ्य का प्रमुख कारण गरीबी है, और महिलाओं का हिस्सा गरीबों में अधिक है। खराब स्वास्थ्य स्वयं भी महिलाओं की गरीबी में योगदान करता है। जब महिलायें बीमार होती हैं, वे घर में काम या मजदूरी नहीं कर पाती हैं। भारत में किये एक अध्ययन से पता चला है कि यदि महिला स्वास्थ्य समस्याओं को हल कर दिया जाय तो महिला श्रम शक्ति 20 प्रतिशत अधिक होगी।

क्या आप जानते हैं?

- 71 प्रतिशत दलित महिलायें खेतिहर मजदूर हैं, 90 प्रतिशत खेती करती हैं।
- 32-40 प्रतिशत कुटीर क्षेत्र में और उनमें से अधिकांश शहरों के असंगठित क्षेत्रों में काम करती हैं।
- लगभग सभी दलित महिलायें 20 साल से कम आयु में श्रम बाजार में आ जाती हैं।
- गुंटूर, आंध्रप्रदेश की लगभग 31.6 प्रतिशत लड़कियां बाल श्रमिक हैं।
- दलित साक्षरता दर 23.76 प्रतिशत है और ग्रामीण क्षेत्रों में यह केवल 19.46 प्रतिशत है।
- पढ़ाई बीच में ही छोड़ देने वाली दलित लड़कियां 53.96 प्रतिशत हैं।
- अधिक स्वास्थ्य समस्यायें होने के बावजूद सबसे गरीब लोगों की अस्पताल में भर्ती होने की दर, सबसे अमीर लोगों की तुलना में 6 गुना कम है। इसका मतलब है कि महिलायें खासकर दलित, आदिवासी और अन्य हाशिये पर पड़ी वर्गो की महिलायें के जरूरत होने पर अस्पताल में भर्ती होने की संभावना कम है।

पितृसत्तात्मक सामाजिक मानक संसाधनों तक पहुंच तथा अन्य मामलों में पुरुषों और महिलाओं की भूमिकायें निर्धारित करता है। परंपरागत रूप से महिलाओं को जमीन एवं संपत्ति(शिक्षा, काम) के अवसरों आदि तक पहुंच से वंचित और निर्णय लेने वाली प्रक्रियाओं से अधिकांशतः बाहर रखा गया है।

> अध्ययनों ने बताया है कि भूख और उससे जुड़ी बीमारियों से मरने वालों में 90 प्रतिशत दलित होते हैं। एससी/एसटी के राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट 2000 के अनुसार आरक्षण और अकादमिक रुझान के बावजूद गरीबी, उत्पीड़न, अलगाव, शिक्षकों एवं साथियों द्वारा परेशान किये जाने और अच्छा स्थान न मिलने पर दंड के कारण 75 प्रतिशत दलित लड़कियां प्राथमिक स्कूल छोड़ देती हैं।

महिलाओं के बीच इन स्थितियों के कारण दलित तथा हाशिये पर पड़े वर्गो तक पहुंच से वंचित रखा गया है जिससे वे आज भी भयंकर गरीबी में जी रहे हैं।

पिछले दशक में पुरुषों की तुलना में गरीबी के नीचे रहने वाली महिलाओं की संख्या में अधिक वृद्धि हुई है। वैश्वीकरण और निजीकरण के परिणामस्वरूप अन्यायपूर्ण सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों ने महिलाओं को और गरीब बनाया है।

बढ़ती गरीबी की इस स्थिति में, मुख्यतः परिवार को एकजुट रखने की जिम्मेदार महिलायें हैं। उनको पुरुषों की तुलना में काम की अत्यधिक खराब परिस्थितियों में कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर होना पड़ा है। बेकारी का स्तर बढ़ने और कुशल श्रमिकों की आवश्यकता वाली तकनीकें आने से महिलाओं को काम से हटाया भी जा रहा है।

जैसे-जैसे मूलभूत सेवाओं के प्राविधान घटाये और राज्य द्वारा दी जाने वाली सब्सिडी कम की जा रही हैं या समाप्त की जा रही हैं, वैसे-वैसे अधिकाधिक बच्चों खासकर लड़कियों को स्कूल छोड़ने पड रहे हैं ताकि वे घरेलू काम में सहायता करें या चीजों एवं सेवाओं के बढ़ते मूल्यों से निबटने के लिए अधिकतर असंगठित और कम मजदूरी वाली असंगठित मजदूरों में शामिल हो जांये।

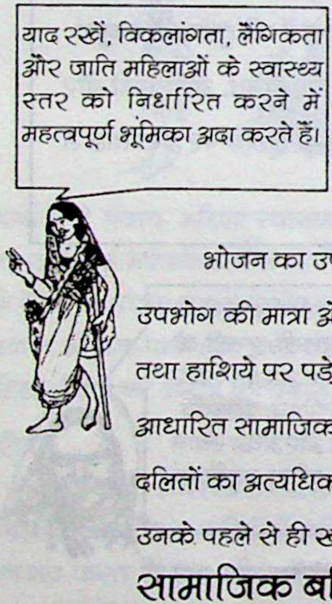

भोजन का उपभोग सीमित है, इसलिये लड़कियो और महिलाओं के भोजन उपभोग की मात्रा और गुणवत्ता, दोनों प्रभावित हो रही हैं। यह दलित, आदिवासी तथा हाशिये पर पड़े अन्य समुदायों के लिए ज्यादा सही है। जाति और संपत्ति पर आधारित सामाजिक बहिष्करण एक दूसरे की मदद करते हैं। उदाहरण के लिए दलितों का अत्यधिक निम्न सामाजिक स्तर गरीबी को बढ़ाता है और गरीबी स्वयं उनके पहले से ही खराब सामाजिक स्तर को और गिराती है।

सामाजिक बहिष्करण

जेंडर आधारित भेदभाव

 तुलनात्मक रूप से महिलाओं का निम्न स्तर और प्रजनन से जुड़े खतरे

पहले से हानिकारक स्वास्थ्य स्थितियों को और खराब कर देते हैं।

जेंडर आधारित भेदभाव जल्दी शुरू हो जाता है जो गिरते लिंग अनुपात और जन्म के पहले से ही लड़कियो से 'मुक्ति पाने' वाली तकनीकों के बेरोकटोक इस्तेमाल से प्रमाणित होता है। किशोरावस्था की शुरूआत में ही आमतौर से लड़कियों की शादी कर दी जाती है और वे अपने पैतृक घर को छोड़कर पति के घर चली जाती हैं। अधिकांश मामलों में वे जो पैसा कमाती हैं, जिस घर में वे रहती हैं और यहां तक कि 'प्रजनन' की पसंद पर भी उनका नियंत्रण नहीं होता है। विरले ही महिलाओं को अपने शरीर, लैंगिकता, प्रजनन क्षमता पर निर्णय करने की स्वायत्तता होती है। अक्सर महिलाओं खासकर लड़कियों का आना-जाना नियंत्रित होता है। इसके अलावा वे जो काम करती हैं उसका मूल्य कम समझा जाता है।

भारत में महिलाओं के प्रतिकूल स्तर का नतीजा: भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्यरक्षा, सूचनाओं तक पहुंच, आदि संसाधनों के आबंटन में भेदभाव के रूप में सामने आता है। संसाधनों के वितरण में यह असमानता: दोयम दर्जे का सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तर तथा प्रजनन भूमिका स्वास्थ्य परिणामों में उनकी अत्यधिक जोखिम के रूप में साकने आती है। महिलाओं का समाजीकरण इस तरह होता है कि वे अपने स्वास्थ्य और स्वास्थ्यरक्षा को कम प्राथमिकता देती हैं। विरले ही माइक्रो और मैक्रो स्तरों पर महिलाओं के पास अपने जीवन और स्वास्थ्य के बारे में निर्णय लेने की शक्ति या अवसर होते हैं और ऐसे स्थानों तथा अवसरों का अभाव है जहां वे अपनी आवश्यकताओं को अभिव्यक्त कर सकें या अपनी प्राथमिकताओं पर फैसले ले सकें।

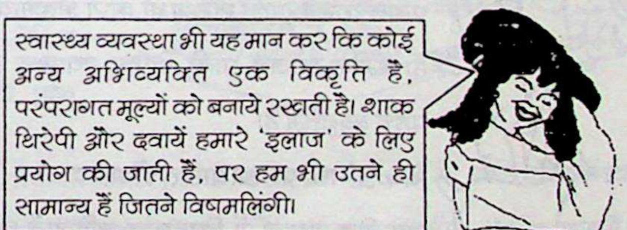

जाति आधारित भेदभाव

जेंडर और वर्ग पर आधारित भेदभाव के अलावा महिलाओं को जाति के आधार पर भी भेदभाव का सामना करना पड़ता है। ऊंची जातियों/वर्गो और राज्य द्वारा

दलित महिलाओं को सर्वप्रथम और सर्वाधिक उत्पीड़न, अपमान और हिंसा का सामना करना पड़ता है। यह जेंडर आधारित भेदभाव और गरीबी या आर्थिक स्तर के अलावा है जो दलित महिलाओं पर तिहरा बोझ होता है। भारत में लगभग 66 मिलियन दलित महिलायें हैं जो कुल दलित जनसंख्या का 48 प्रतिशत हैं। भारत में जनसंख्या की 16.3 प्रतिशत दलित महिलाओं में 81.4 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में रहती हैं।

जाति आधारित भेदभाव दलितों पर सामाजिक बहिष्करण थोप देता है जो न केवल शिक्षा वरन् आवास, धार्मिक संस्थानों और सामाजिक अवसरों पर उनके और दूसरी जातियों के बीच भौतिक विभाजन ला देता है। दलितों को सार्वजनिक स्थानों पर भोजन करने से मना किया जाता है और उनको जाति आधारित काम करने पर मजबूर किया जाता है जिसे गंदा माना जाता है जैसे, शौचालय साफ करना, मुर्दा जानवरों की खाल निकालना और उनको फेंकना, कब्रें खोदना, हाथों से मैला साफ करना और महिलाओ द्वारा उसे उठाना। ग्रामीण क्षेत्रों की

अधिकांश दलित महिलायें कम/निम्न मजदूरी के साथ बंधुआ खेतिहर मजदूरों की तरह काम करती हैं।

दलित महिलाओं को कानून लागू करने वाली या यहां तक कि स्वास्थ्य प्रदान करने वाली संस्थाओं द्वारा भेदभाव के खिलाफ संघर्ष करना पड़ता है। जमीन, भोजन, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं आदि संसाधनों तक उनकी पहुंच न्यूनतम है।

विकलांगता पर आधारित भेदभाव

भारतीय समाज में विकलांग महिलायें सर्वाधिक हाशिये पर हैं। विकलांग महिलाओं को अनेक नुकसान होते हैं, जाति पर आधारित, विकलांग होने के कारण और गरीबी के कारण। बहुसंख्य विकलांग महिलायें गरीबी में रहती हैं, जो संसाधनों पर उनकी पहुंच सीमित करती है। सीमित पहुंच स्वयं भी गरीबी को बढ़ाती और विकलांगता का कारण बनती है। गरीबी और

विकलांगता का यह चक्र महिलाओं को शिक्षा और स्वास्थ्यरक्षा सहित राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक अवसरों से वंचित करता है। विकलांग महिलाओं की कोई फिक्र नहीं करता, वे गायब सी होती हैं और सामान्य एवं स्वीकार्य को निर्धारित करने वाले सामाजिक मानकों के कारण उनको निर्णय प्रक्रिया से बाहर रखा जाता है। विकलांग महिलायें एक समजातीय समूह नहीं हैं। विकलांगतायें बदलती हैं, उदाहरण के लिए मानसिक विकलांगता, मानसिक मंदता या आयु के कारण चलने-फिरने में कठिनाई, देखने या सुनने या बोलने में कठिनाई अथवा तथाकथित 'चिकित्सकीय विकलांगता' हो सकती है। इन सभी विकलांगताओं में भिन्न प्रकार की बाधाओं का अनुभव होता है, जिनको भिन्न तरीकों से दूर किया जाना होता है। इस प्रकार विकलांगता खराब स्वास्थ्य स्तर का एक कारण और परिणाम होता है।

> भारत में कामगार वर्ग का केवल 29.4 प्रतिशत संगठित क्षेत्र में है और बाकी 90 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में, जिसमें 89 प्रतिशत महिलाये हैं। हमें उसी क्षेत्र में अपने पुरुष साथियों की तुलना में कम मजदूरी मिलती है और सभी पेशों में बाधाओं और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है।

लैंगिकता के आधार पर भेदभाव

सामाजिक और राजनीतिक मानक 'सामान्य' लैंगिकता को परिभाषित करते हैं। सामान्य लैंगिकता को अधिकांशतः उन संबंधो में माना और उन्हीं तक सीमित समझा जाता है जो विषमलिंगी, एक पति और एक पत्नी, वैवाहिक, प्रजनन के लिए; उसी जाति, धर्म एवं वर्ग में; आदि हों। लैंगिकता का सृजन राजनैतिक है और कुछ लैंगिकताओं को अनैतिक तथा अश्लील जबकि दूसरों को मानक की तरह स्वीकार किया जाता है। यह सृजन 'सामान्य' और अच्छी लैंगिकता को एक निश्चित शक्ति देता है और 'असामान्य' एवं 'बुरी' लैंगिकता को शक्ति देने से इनकार करता है।

जो लैंगिकतायें 'सामान्य' की सीमा में नहीं आतीं उनका उत्पीड़न होता है तथा उनके स्वास्थ्य अधिकार से इनकार किया जाता है। सेक्स वर्कर, लैंगिक अल्पसंख्यक और अन्य महिलायें जो विषमलिंगी, प्रजननात्मक, उसी जाति और वर्ग आदि के दायरे में नहीं आतीं उनको हाशिये पर डाल दिया जाता है और अक्सर दूसरे समुदायों से हिंसा का सामना करना पड़ता है। इससे उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा स्वास्थ्य सेवायें नीति और लागू करने/कार्रवाई के स्तर पर (एचआईवी/एड्स के कुछ बहुत संकुचित सीमित संदर्भों को छोड़ कर) विविध लैंगिकताओं को स्वीकार नहीं करती हैं अतः वे इन मानकों के बाहर लोगों को स्वास्थ्य रक्षा नहीं देतीं।

इसके परिणामस्वरूप, नीतियां और कार्यक्रम विवाहित पुरुषों और महिलाओं तथा इस मानसिक ढांचे में उनके प्रजनन पर केन्द्रित होते हैं। इस ढांचे के बाहर लैंगिकताओं को दंडित और/या अनदेखा कर दिया जाता है, उदाहरण के लिए विकलांग, किशोरियां, अकेली महिलायें, वृद्ध (रजोनिवृत्ति के बाद) महिलायें, आदि।

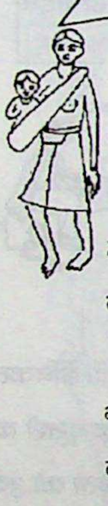

> राष्ट्रीय श्रम आयोग का कहना है कि 85 प्रतिशत दलित महिलायें सबसे कठिन व्यवसायों में हैं। कुछ खेतिहर मजदूर, सफाई करने वाली, मानव मल उठाने वाली, आदि हैं। दूसरी कुटीर उद्योगों में हैं, निर्माण मजदूर, दर्जीगीरी, रात्रि स्कूलों में शिक्षक या असंगठित श्रमिकों (घरेलू कामगार, सेक्स वर्कर, अनियमित मजदूर) के तौर पर काम करती हैं।

काम और परिवेश

कामगारों के तौर पर महिलाओं को नीचे स्थान पर रखा जाता है, उनको गृहिणी के तौर पर परिभाषित कर जबर्दस्ती अदृश्य बनाये रखा जाता है। वे घरेलू दायरे के भीतर और बाहर विभिन्न कामों में लगी रहती हैं, पर महिलाओं के काम को काम के तौर पर स्वीकार करने के लिए भी लम्बा संघर्ष जारी है। हालांकि व्यापक रूप से इसे मान्यता तथा स्वीकार्यता दी गई है कि घरेलू काम, बच्चों को पालना और वृद्धों की देखभाल महिलाओं के काम का एक बड़ा हिस्सा है पर इस

बात की समझ बहुत सीमित है कि इसमें क्या-क्या शामिल है। खाना बनाना, सफाई, धुलाई, स्तनपान, बीमारों की देखभाल; पानी, चारा, ईंधन, आदि एकत्र करना महिलाओं के समय और ऊर्जा का बड़ा हिस्सा मांगते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण, निर्वनीकरण, बड़े बांध, राजमार्ग, खनन, भोपाल गैस कांड जैसी औद्योगिक दुर्घटनायें, समुद्र तटीय संसाधनों का निजीकरण, पर्यटन, अभयारण्य आदि संसाधनों को नष्ट करते तथा महिलाओं की उन तक पहुंच को सीमित करते हैं। यह महिलाओं पर बोझ और बीमारी को बढ़ाता है, खासकर आदिवासियों, दलितों और हाशिये वाले वर्गो की महिलाओं को प्रभावित करता है। क्षरण के परोक्ष प्रभाव जैसे भयंकर सूखा या निर्वनीकरण के कारण आने वाली भीषण बाढ़ें गरीबों, दलितों, आदिवासियों, महिलाओं तथा हाशिये वाले वर्गो की महिलाओं को सर्वाधिक प्रभावित करती हैं, क्योंकि उनके निकाले जाने, विस्थापित होने और काम देने से इनकार करने आदि की संभावना सबसे अधिक होती है। इन मामलों में गरीबी पर्यावरण विनाश का सीधा परिणाम है जो महिलाओं के लिए गंभीर स्वास्थ्य समस्यायें पैदा करता है।

केस स्टडी

सत्तरह वर्षीय मालार, एक दलित परिवार से है। उसके माता-पिता खेतिहर मजदूर हैं। वह नवें दर्जे तक पढ़ी है। वह एक दवा कंपनी में पिछले दो वर्षो से काम कर रही है। अपनी मां के साथ घरेलू काम के लिए वह समय नहीं दे पाती है। उसका दिन सवेरे पांच बजे शुरू होता है। चूंकि उसके घर में शौचालय की कोई व्यवस्था नहीं है, उसे अपनी मां के साथ सवेरे अंधेरे में शौच के लिए जाना होता है। वह अपना घर सवेरे 7 बजे छोड़ देती है और फैक्ट्री जाने के लिए एक बस पकड़ती है। उसकी साथी अधिकांशतः यात्री विभिन्न इकाइयों में काम करने वाली महिलायें होती हैं। शिफ्ट 8.30 बजे सवेरे शुरू होती और 5 बजे समाप्त होती है, बीच में आधा घंटा खाने की छुट्टी होती है। अधिकांश दिनों में उसे ओवरटाइम करना होता है और वह घर रात में लगभग 8.30 बजे पहुंचती है। उसे सवेरे और शाम को बहुत थकावट महसूस होती है जिसके कारण वह घरेलू काम में मां का

हाथ नहीं बटा पाती है। खाने के बाद वह फौरन सोने चली जाती है। उसे यह भी एक विलासिता की चीज लगती है जो उससे शादी के बाद छिन जायेगी। उसका कहना है कि अधिकांश साथी कामगारों के साथ ऐसा ही हुआ है। वह शादी होने तक ऐसे ही काम करती रहेगी।

असंदिग्ध रूप से, जब कंपनी को अधिक आर्डर मिल जाते हैं, कर्मचारियों पर ओवरटाइम करने के लिए दबाव पड़ता है। विस्तारित शिफ्ट आमतौर से 7.30 बजे रात तक चलती है। कंपनी की गाड़ी महिलाओं को उनके घरों पर छोड़ देती है। वे 8.30 से 9 बजे रात तक घर पहुंचती हैं।

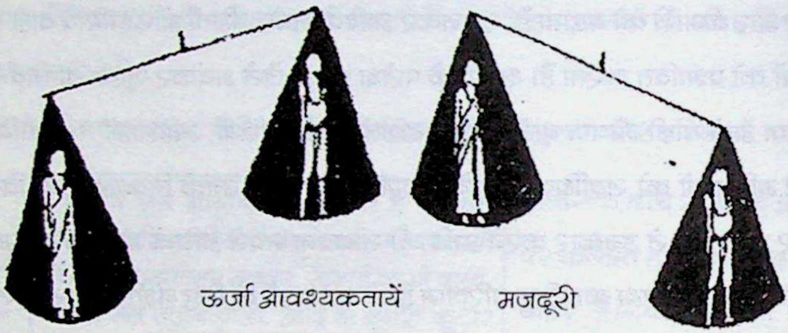

विवाहित महिलाओं के लिए पितृसत्तात्मक परिवारों में यह गंभीर विवाद का कारण बनता है, जहां उनके पति इस ओवरटाइम का कड़ा विरोध करते हैं। एक बार कुछ पति इकाइयों में जबर्दस्ती घुस गये और इस ओवरटाइम को समाप्त करने की मांग की। उसके बाद इकाइयां केवल अविवाहित महिलाओं को ठेके पर रखती हैं, जैसे ही महिलाओं की शादी होती है उनको काम से हटा दिया जाता है।

मालार को 750 रुपये मासिक वेतन मिलता है और ओवरटाइम के बदले मुआवजे के तौर पर उसे महीने में तीन दिन की छुट्टी मिलती है। काम के समय उसे सुरक्षा उपकरण जैसे टोपी, दस्ताने, मास्क आदि मिलते हैं। इकाई में बोतलें साफ करने, बैच बनाने, मिलाने, भरने, पैकिंग, सील लगाने की कई प्रक्रियायें हैं। उत्पादन के लक्ष्य बहुत कठोर हैं। एक टीम में आमतौर से 18 कर्मी होते हैं। उनको दवा के 450 बक्से तैयार करने होते हैं और हर बक्से में 25 बोतले होती हैं। औसतन एक टीम प्रति दिन लगभग 415 बक्से तैयार करती है।

उसके कामकाजी जीवन में फैक्ट्री की एक दुर्घटना है जिसे भुलाया नहीं जा सकता है। उसकी एक मित्र सीलिंग विभाग में काम कर रही थी जब कांच की एक बोतल में विस्फोट हो गया। कांच के टुकड़े उसके चेहरे में घुस गये और वह बेहोश हो गई। उसे जल्दी से अस्पताल भेजा गया जहां वह एक हफ्ते भर्ती रही। वह 15 दिन के बाद काम पर वापस आ सकी पर निशान अभी बाकी हैं।

निकाले जाने और विस्थापन से परंपरागत स्वास्थ्य व्यवहार और वह स्वास्थ्यरक्षा व्यवस्थायें नष्ट हो जाती हैं जिनका विकास एक खास परिवेश और एक समुदाय में रहते हुये लोगों की अनेक पीढियों ने किया था। इसके कारण उनको आजीविका के लिए काफी वैकल्पिक संसाधन नहीं मिलते हैं, समुदाय में परस्पर संबंध तथा सहायक व्यवस्थायें खराब हो जाती हैं। अधिकांश मामलों में निकालना अन्यायपूर्ण व जबर्दस्ती तथा उचित मुआवजे के बिना होता है जिससे अत्यधिक गरीबी पैदा होती है। गरीबी की ऐसी स्थितियों में लड़कियों और महिलाओं को छोड़ दिये जाने, वेश्यावृत्ति के लिए भेजे जाने, उत्पीड़न, आदि का शिकार होना पड़ सकता है जो अनेक स्वास्थ्य समस्याओं का जोखिम बढाता है।

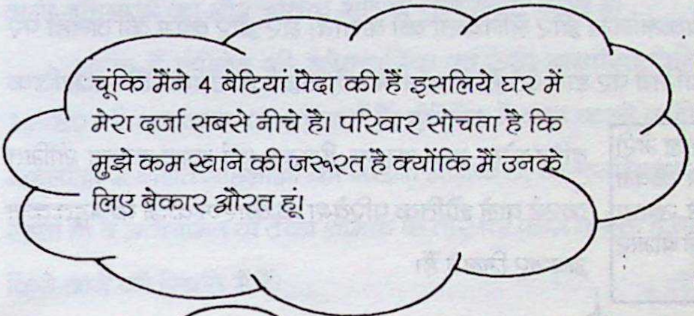

विकलांग पुरुषों के मुकाबले विकलांग महिलाओं को केवल 56 प्रतिशत मजदूरी मिलती है। विकलांग पुरुषों या सामान्य महिलाओं की तुलना में विकलांग महिलाओं को मजदूरी के मौके कम मिलते हैं। लाभदायक रोजगार प्राप्त करने के लिए महिलाओं को असुरक्षा, कम मजदूरी, काम का अधिक समय, अस्वास्थ्यकर स्थितियों और अक्सर लैंगिक उत्पीड़न का

शिकार होना पड़ता है। अत्यधिक गरीबी और आसानी से 'उपलब्ध' होने की जातिगत समझ के कारण दलित महिलाओं की स्थिति खास तौर से जोखिम वाली होती है।

आमतौर से सर्वाधिक कठिन काम महिलाओं द्वारा किया जाता है, उदाहरण के लिए खेती में रोपाई, निराई, कटाई, आदि महिलाओं के काम हैं। इसी प्रकार ईंधन और पानी एकत्र करना भी महिलाओं की जिम्मेदारियां हैं।

जाति, वर्ग, जेंडर, विकलांगता और लैंगिकता की बाधायें; घर और काम की जगहों पर उनकी स्थितियों को और हाशिये पर डाल देते हैं। विकलांग महिलाओं को उनके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण तथा चलना-फिरना एवं काम करना सीमित करने वाले भौतिक परिवेश के कारण काम के बहुत कम अवसर मिलते हैं।

इसके अलावा तकनीकी खोजों के कारण महिलाओं के काम की प्रकृति बदली है। यदि श्रम को नई तकनीकों से विस्थापित किया जाता है तो अक्सर महिलायें प्रभावित होती हैं क्योंकि विरले ही उनको मशीनीकृत प्रक्रियाओं का प्रशिक्षण दिया जाता है, इसलिये कामगारों में उनको फिर से शामिल करने की समस्या हो सकती है। काम में कटौती का सर्वाधिक प्रभाव दलित महिलाओं पर पड़ता है, क्योंकि रोजगारों में यह कटौती आमतौर से अनौपचारिक क्षेत्र में, छोटे फार्मों में, और अकुशल तथा कम कुशल मजदूरों में होती है जिनमें से अधिकांशतः दलित महिलायें शामिल हैं।

वैश्वीकरण के चलते विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने के लिए निर्यात प्रोत्साहन क्षेत्रों (ईपीजेड)/विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना हुई है। इनमें भारी संख्या में महिलाओं को रोजगार मिला है जिनका शोषण किया जाता है या उनसे अधिक काम लिया जाता है क्योंकि इन

क्षेत्रों में चुने हुये श्रम कानून ही लागू हैं और मजदूरों को यूनियनों में शामिल होने पर रोक है। प्रगति को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने श्रम एवं निरीक्षण कानूनों में रियायत दी है। मजदूरी की तरह अन्य लाभ भी न्यूनतम हैं। इसके साथ ही अधिक युवा महिलाओं को पसंद किया जाता है क्योंकि उनको आसानी से प्रभावित किया जाने वाला तथा घरेलू जिम्मेदारियों से मुक्त माना जाता है। जवाबदेही व्यवस्था की अनुपस्थिति और विशेष नियम यहां काम करने वाली महिलाओं का और अधिक शोषण सुनिश्चित करते हैं।

भारत में ईपीजेड की इलेक्ट्रानिक एवं रेशा आधारित विनिर्माण इकाइयों में लगभग 70-80 प्रतिशत कामगार महिलायें हैं। ईपीजेड में काम करने वाली अकुशल और कम कुशल महिलाओं में दलित महिलाओं की संख्या अधिक है, जो एसम्बिलंग कामों तथा पैकिंग में लगी रहती हैं। वे अनियमित या ठेका श्रमिक के तौर पर काम करती हैं तथा बहुत गरीब और शोषण किये जाने की स्थिति में हैं।

जहां बेरोकटोक औद्योगीकरण ने पर्यावरण को नुकसान पहुंचाया है वहीं वैश्वीकरण और नव-उदारवादी व्यापार व्यवहारों जैसे विकसित और विकासशील देशों से कचरे को भेजे जाने ने खतरनाक रूप लिया है। घरों के अलावा अस्पतालों और अन्य उद्योगों से भारी मात्रा में कचरा पैदा होता है। इससे न केवल पर्यावरण पर प्रभाव पड़ा है बल्कि ऐसे कचरे के साथ काम करने वाले लोगों के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है जिनमें मुख्यतः सबसे अधिक गरीबों जिनमें बहुसंख्य महिलायें और बच्चे हैं।

खाद्य एवं पोषण

महिलायें भोजन बनाने और परिवार की पोषण आवश्यकताओं को पूरी करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं पर उनकी अपनी स्वास्थ्य एवं पोषण आवश्यकताओं को अनदेखा किया जाता है। गरीबी, भोजन करने संबंधी सांस्कृतिक मानक और परिवार के भीतर भोजन का आबंटन महिलाओं के पोषण स्तर को प्रभावित करता है।

ये व्यवहार बहुत जल्दी शुरू हो जाते हैं। लड़कों के मुकाबले लड़कियों को कम बार, कम

अवधि के लिए और कम समय के लिए स्तनपान कराया जाता है। उनका दूध जल्दी छुड़ा दिया जाता है और हो सकता है उनको वैकल्पिक खाद्य की समुचित मात्रा न मिले। लड़कियों को दिये जाने वाले भोजन के मुकाबले लड़कों को दिये जाने वाले भोजन की गुणवत्ता आमतौर से अधिक पोषक होती है। गरीब परिवारों में या कमी के समय यह स्थिति और खराब हो जाती है, भारी संख्या में शहरों और गांवों के लोगों के लिए यह स्थिति सामान्य लगती है।

असमान खाद्य वितरण का खास असर महिलाओं, खासतौर से विकलांगता से पीड़ित महिलाओं, उन महिलाओं जिन्होंने पुत्र को जन्म न दिया हो तथा वृद्ध महिलाओं पर पड़ता है।

एनएफएचएस-2 के अनुसार 15-19 आयुवर्ग की 34 प्रतिशत महिलायें विवाहित हैं। विवाह, युवा महिलाओं की जीवनशैली में अनेक परिवर्तन लाता है जो उनके पोषण स्तर को कम करते हैं, उदाहरण के लिए काम का बढ़ा बोझ, आराम और फुर्सत में कमी, उपवासों की परंपरा शुरू होना और जल्द ही बच्चा होने की संभावना। यौवनारम्भ, मासिक चक्र, गर्भावस्था और शिशुजन्म के संदर्भ में पोषण अनुपयुक्तता और भोजन से वंचित रहने का मामला अधिक स्पष्ट है। उदाहरण के लिए भारत के बहुत से हिस्सों में गर्भावस्था और स्तनपान के समय मांस अंडे तथा उच्च प्रोटीन वाले भोजन महिलाओं को नहीं दिये जाते हैं। कुछ भागों में प्रसव के बाद

उपयुक्त आवास तक पहुंच में महिलाओं के कुछ समूहों के विरुद्ध पक्षपात किया जाता है। अक्सर ऐसे समूहों में घरेलू हिंसा की शिकार, अकेली महिलायें, वृद्धा, महिला प्रमुख वाले परिवार, अपने बच्चों से जबरन अलग कर दी गई महिलायें, देशी और आदिवासी महिलायें, विकलांग महिलायें, संघर्ष/संघर्ष के बाद वाली स्थितियों में महिलायें, शरणार्थी, प्रवासी एवं घरेलू कामगार, सेक्स वर्कर, लेस्बियन एवं ट्रांसजेंडर महिलायें हैं। इनके बेघरबार होने तथा हिंसा या उत्पीड़न का शिकार होने की संभावना होती है।

पानी पीने पर रोक भी होती है।

इस विश्वास के कारण कि महिलायें पुरुषों की तुलना में कम काम करती हैं; वयस्क महिलायें पुरुषों की तुलना में पौष्टिक भोजन/पौष्टिक तत्व कम लेती हैं। ऐसा अधिक लम्बे समय तक और अधिक थकाने वाला काम करने के बावजूद होता है।

भोजन का संस्कृति और समुदाय के साथ भी निकट संबंध होता है। चाहे उनका वर्ग जो भी हो, अनेक ऐसे भोजन व्यवहारों का चलन होता है जो अधिकांशतः महिलाओं पर थोपे जाते हैं और उनके पोषण स्तर को प्रभावित करते हैं। छोटी लड़कियों और महिलाओं के साथ पोषण के मामले में यह भेदभाव कृषि की प्रगति और आर्थिक विकास के बावजूद होता है।

नव उदारवादी नीतियों ने पूरी जनसंख्या खासकर महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव डाला है। फसलों के तरीके में परिवर्तन, जंगलों तक सीमित पहुंच, खरीदने की शक्ति में कमी, अक्षम सार्वजनिक वितरण प्रणाली और सांस्कृतिक व्यवहार ऐसे प्रमुख कारण हैं जो खाद्य सुरक्षा, कम भोजन; महिलाओं खासकर दलित एवं आदिवासी महिलाओं और महिला प्रमुख वाले परिवारों के खराब पोषण स्तर का कारण हैं।

गरीबों तथा हाशिये पर पड़े लोगों को भोजन की उपलब्धता और उसे प्राप्त करने की क्षमता, भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली से नजदीकी से जुड़ी है। यह व्यवस्था 1964 से सस्ती दरों पर राशन उपलब्ध कराती रही है। पर 1977 से लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली को लागू किया गया जिसके परिणामस्वरूप राशन के दाम तेजी से बढ़े। उपभोक्ताओं को दो श्रेणियों में बांटा गया-गरीबी रेखा के ऊपर (एपीएल) और गरीबी रेखा के नीचे (बीपीएल); एपीएल उपभोक्ता सार्वजनिक वितरण प्रणाली से बाजार दर पर सामान खरीद सकते थे जबकि बीपीएल उपभोक्ताओं को आधे दाम देने थे। पर, दाम अब भी बीपीएल श्रेणी वाले लोगो की खरीद शक्ति से अधिक थे। 2002 में केन्द्रीय सरकार द्वारा बीपीएल श्रेणी के अंतर्गत सब्सिडी दिये जाने वाले लोगों की संख्या में कमी करने के निर्णय का बहुत बुरा असर पड़ा। अकेले राजस्थान में 10 लाख परिवारों को बीपीएल सूची से हटा दिया गया।

अनेक गांवों और शहरों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली भ्रष्टाचार के कारण बेकरा हो गई है। अक्सर सार्वजनिक वितरण प्रणाली से राशन नहीं मिलता और जब मिलता है तब यह मानक के नीचे होता है। सत्तर प्रतिशत चावल और 60 प्रतिशत गेंहू लक्षित व्यक्तियों तक कभी नहीं पहुंचता है। इसके परिणामस्वरूप लोगों को बाजार से खरीदने पर मजबूर होना पड़ता है जिससे वे कर्ज के जाल में फंस जाते हैं जिनके पास पैसा नहीं होता। इनमें से, खर्च में कटौती कर सब्सिडी घटाने वाले, बहुत से गरीब विरोधी परिवर्तन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ढांचागत समायोजन नीतियों और वैश्वीकरण से जुड़े हैं। विकासशील देशों के अधिकांश पोषण कार्यक्रमों को मुख्यतः बच्चों में कुपोषण कम करने के लिए तैयार किया गया है। यहां तक कि महिलाओं को शामिल करने वाले कार्यक्रमों को गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं पर केन्द्रित किया गया है। यह दृष्टिकोण हस्तक्षेपों की सफलता सीमित कर देता है क्योंकि पोषण संबंधी प्रजनन परिणाम महिला के गर्भवती होने के पहले सर्वाधिक प्रभावी होते हैं, और वरीयता से इनको प्रजनन योग्य आयु होने के पहले लागू किया जाना चाहिये। विकासशील देशों में पुरुषों और महिलाओं की परिस्थितियां महिलाओं की पोषण स्थितियों को प्रभावित करती हैं, और पोषण हस्तक्षेपों को तैयार करते समय इनको ध्यान में रखना जरूरी है।

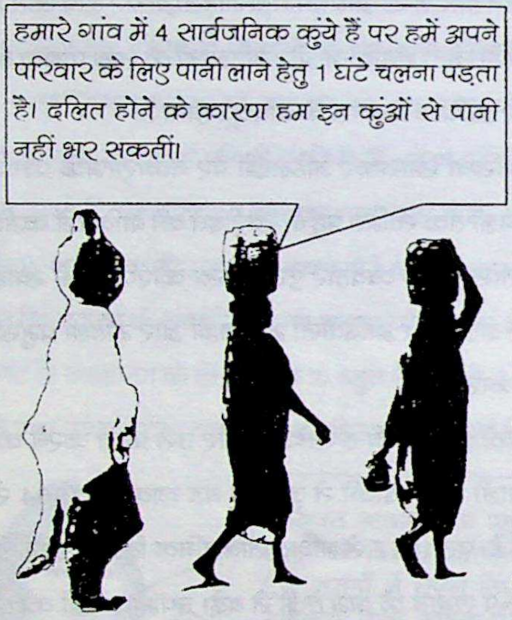

आवास, पानी और सफाई

महिलायें देखभाल करने की प्राथमिक भूमिकायें निभाती हैं और अपना अधिक समय घर पर बच्चों, परिवार के सदस्यों की सेवा और घरेलू काम करते हुये बिताती हैं। काफी महिलायें घर पर रह कर काम करती हैं जो मजदूरों के अनियमितीकरण, श्रम बाजार में परिवर्तन और वैश्विक नीतियों में परिवर्तन के चलते बढ़ते जा रहे हैं। यही मुख्य कारण है कि आवास से जुड़े मुद्दे महिला स्वास्थ्य पर ज्यादा असर डालते हैं। आवास में केवल भौतिक संरचनायें ही शामिल नहीं है बल्कि यह सामाजिक और सामुदायिक सुविधाओं, आवश्यक सेवाओं आदि को भी अपने दायरे में समेटता है जैसे पानी, सफाई, कचरा निस्तारण एवं आजीविका से संबंधित नागरिक सुविधायें। आवास न होना/बेघरबार या अनुपयुक्त, खराब आवास खासकर महिलाओं के लिए बीमारी, चोट, हिंसा आदि का जोखिम बढ़ा देते हैं।

भारत में लगभग 2.3 मिलियन लोग बेघरबार हैं। लगभग 70-80 प्रतिशत शरणार्थी और आन्तरिक विस्थापन का शिकार महिलायें हैं।

आजकल जबर्दस्ती निकाल देना आम बात हो गई है और इसका महिलाओं के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। आमतौर से इसका प्रभाव सबसे गरीब, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सबसे जोखिम वाले और समाज के हाशिये पर पड़े लोगों पर होता है। जैसे 'शहरी क्षेत्रों/शहरों का सौंदर्यीकरण' गरीब और महिलाओं को और अधिक हाशिये पर धकेल देता है। बाहर निकाले जाने ने वर्तमान सामाजिक असमानताओं और संघर्षो को बढ़ते हुये 'मलिन बस्तियों' का निर्माण किया है। अधिकांश जमीनें जिन पर मलिन बस्तियां होती हैं वे सरकारी या स्थानीय गुंडों की होती हैं, अक्सर महिलाओं को दिन प्रतिदिन हिंसा का सामना करना पड़ता है। महिलाओं की पहुंच अक्सर नागरिक सुविधाओं तक नहीं हो पाती और वे स्थानीय ठगों और अधिकारियों के रहम पर छोड़ दी जाती हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्थिति बहुत बुरी है खासकर उन इलाकों में जहां हाशिये पर रहने वाले समुदाय जैसे दलित, आदिवासी और मुसलमान, आदि रहते हैं। ये क्षेत्र भौगोलिक/भौतिक रूप से दूसरों से अलग किये गये हैं। यहां नागरिक सुविधायें जैसे पानी, सफाई आदि खराब या गायब हैं। पानी की कमी, खराब सफाई और अनुपयुक्त सीवेज व्यवस्था, जो राष्ट्र के सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था की बड़ी समस्यायें हैं गरीबों, दलितों, आदिवासियों खासकर महिलाओं को सर्वाधिक प्रभावित करती हैं।

महिलाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण यह तय करता है कि वे कैसे व्यवहार करें जो अक्सर उनकी निजता की आवश्यकता को बढ़ाता है। उन स्थानों पर जहां कोई शौचालय, स्नानघर नहीं होते या पहुंच में नहीं होते वहां महिलाओं में स्वास्थ्य समस्यायें बहुत अधिक होती हैं क्योंकि वे दूसरों की तरह खुली जगहों का प्रयोग नहीं कर सकतीं। जहां पुनर्वास योजनायें बनती हैं वहां भी महिलाओं की जरूरतों पर बिरले ही गौर किया जाता है

महिलायें अपने समय का काफी हिस्सा दूरस्थ कुंओं और अन्य स्रोतों से पानी लाने में खर्च करती हैं और उसकी कमी उनके ऊपर बोझ बढ़ा देती है। पेयजल की उपलब्धता आज भी बहुत गंभीर मामला है, खासकर बहुसंख्य महिलाओं के लिए। उपलब्ध आंकड़ों से संकेत मिलता

है कि केवल 56 प्रतिशत महिलाओं की पेयजल सप्लाई तक पहुंच है।

पर, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में उपलब्धता का मतलब आसान पहुंच होना जरूरी नहीं है। यह जाति और वर्ग आयामों के कारण और पेचीदा हो जाती है। आज भी बहुत से गांवों में नीची जाति की लड़कियों और महिलाओं को ऊंची जाति वाले लोगों के कुओं से पानी निकालने की अनुमति नहीं है क्योंकि यह माना जाता है वे पानी को 'गंदा' कर देंगी, अक्सर इसके कारण उनको हिंसा का शिकार होना पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल के स्रोत घरों से बहुत दूर हो सकते हैं। शहरी क्षेत्रों में स्रोत पास हो सकते हैं पर समय और मात्रा नाकाफी हो सकती है। पानी एकत्र करना महिलाओं और लड़कियों की प्रमुख जिम्मेदारी होने के कारण, मौसम और उपलब्धता के आधार पर उनके अनेक घंटे इस काम में खर्च हो सकते हैं।

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में तेज औद्योगीकरण, खेती के तरीकों में परिवर्तन, निर्वनीकरण, आदि के कारण जल प्रदूषण और कमी बढ़ती रह सकती है। निर्माण तथा औद्योगिक इस्तेमाल आदि में पानी के बेरोकटोक वाणिज्यिक प्रयोग के कारण देश के अनेक भागों में भूमिगत जल का स्तर बहुत गिर गया है जिसके कारण पेयजल तथा पानी के घरेलू इस्तेमाल पर असर पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह परंपरा देखने में आ रही है कि निजी और सरकारी जल सप्लाई करने वालों द्वारा शहरों को सप्लाई करने के लिए गांव के जल संसाधनों को बेचा या सप्लाई किया जा रहा है।

चुड़ैलों के नाम पर उत्पीड़न

भारत के अनेक राज्यों में चुड़ैलों के नाम पर हत्यायें और उत्पीड़न की जड़ें सामाजिक-आर्थिक आयामों जैसे जमीन पर कब्जा करना, संपत्ति संबंधी विवादों, व्यक्तिगत दुश्मनी तथा लैंगिक संबंधों के विरोध, आदि में निहित हैं। अनेक मामलों में महिलायें अपने मृत पति की जो संपत्ति विरासत में प्राप्त करती हैं उसे पति के रिश्तेदारों, परिवार या अन्य लोगों द्वारा छोड़ दिये जाने का दबाव डाला जाता है। यदि वह इसका विरोध करती है, वे ओझाओं आदि को रिश्वत देकर उसे चुड़ैल घोषित करवा देते हैं। औरतों को चुड़ैल घोषित करवा देने की यह

रणनीति उन महिलाओं के खिलाफ भी इस्तेमाल की जाती है जो समुदाय के ताकतवर लोगों द्वारा जबरन लैंगिक संबंध बनाने का विरोध करती हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में पानी की कमी वर्ग और जाति पहचानों को और मजबूत करने के रूप में दर्ज की गई है। हालांकि आमतौर से औरतों पर पानी एकत्र करने की जिम्मेदारी होती है, खासकर नीची जातियों और गरीब परिवारों के लिए पानी की कमी जल वितरण व्यवस्थाओं पर ऊंची जातियों और अमीर आदमियों द्वारा नियंत्रण के कारण पैदा होती है। अक्सर पानी की अत्यधिक कमी पर महिलाओं की प्रतिक्रिया खाना पकाने, धुलाई, सफाई को सीमित करने द्वारा होती है जिसके उनके, उनके परिवार और समुदाय, आदि.के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ता है।

वैश्वीकरण के दौर में, कुछ राज्यों ने पानी को 'राज्य संपत्ति बनाने के लिए नई जल नीतियों और कानूनों को शुरू किया है, जिसका बाद में निजीकरण किया जा सकता है। पानी के वाणिज्यीकरण और उसे मुनाफे के लिए बेचना खासकर उस देश के लिए विनाशकारी हो सकता है जहां जल से फैलने वाली बीमारियां, खराब स्वास्थ्य और बीमारियों के प्रमुख कारणों में एक है। अनुमान है कि लगभग 50000 लोग अधिकांशतः महिलायें और बच्चे रोज खराब आवास, प्रदूषित पानी और अनुपयुक्त सफाई के कारण मौत का शिकार होते हैं।

आवास और स्वास्थ्य के महिलाओं के अधिकारों का, गहरी जड़ें जमाये पितृसत्तात्मक परंपराओं और मूल्यों के कारण हनन होता है जो पुरुषों को संपत्ति, जमीन और धन पर अधि ।कार को निर्धारित करते हैं। कम आमदनी, परिवार की जमीन तथा संपत्ति तक सीमित पहुंच के कारण अधिकांश महिलायें आवास के लिए ऋण प्राप्त करने में अक्षम हो सकती हैं।

शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय परिस्थितियों को प्रभावित करने वाले अनेक आयाम जैसे नागरिक सुविधाओं की कमी, अथवा इनकी सीमित उपलब्धता या इन तक पहुंच, स्वास्थ्य समस्याओं का बड़ा कारण हैं। अन्य आयाम जैसे शोर का ऊंचा स्तर, घर में हवा की खराब गुणवत्ता, अनुपयुक्त कचरा भंडारण एवं निस्तारण सुविधायें, खराब खाद्य भंडारण एवं भोजन तैयार करने की सुविधायें, अत्यधिक तापमान एवं ज्यादा नमी, अधिक भीड़भाड़, खराब प्रकाश,

अनुपयुक्त या खराब भवन निर्माण सामग्री, इमारत एवं कीट नियंत्रण की गड़बड़ियां भी स्वास्थ्य पर काफी प्रभाव डाल सकती हैं। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के कारण बेघरबार होने की संभावना बढ़ जाती है और बेघरबार होने का भय महिलाओं को हिंसा और शोषण की परिस्थितियों में रहने को मजबूर कर सकता है। यह अच्छी तरह समझा गया है कि हिंसा का स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ता है।

हिंसा

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का फैलाव सार्वजनिक या निजी दायरे में भौतिक, लैंगिक या मनोवैज्ञानिक हिंसा तक है। महिलाओं को अपने जीवन भर विभिन्न प्रकार की हिंसा का सामना करना पड़ता है। लिंग अनुपात महिलाओं और लड़कियों के विरुद्ध भेदभाव और हिंसा के प्रभाव का प्रमाण है।

हालांकि समग्र रूप से देश के लिंग अनुपात में महिलाओं के प्रतिशत में हल्का सा सुधार है, पर 0-6 वर्ष आयुवर्ग के बच्चों के लिंग अनुपात में खतरनाक गिरावट आई है और वर्तमान समय में यह 1000 लड़कों पर 927 लड़कियों का है (भारत की जनगणना 2001)। 1991 से 2001 के बीच शहरी क्षेत्रों में लिंग अनुपात 935 से घटकर 903 और ग्रामीण क्षेत्रों में 948 से 934 हो गया।

केस स्टडी : सांप्रदायिक हिंसा, गुजरात

अब शाम के 6.30 बज गये थे। भीड़ ने मेरे पति को पकड़ लिया और उनके सिर पर तलवार से दो वार किये। उसके बाद उन्होंने उनकी आंखों में पेट्रोल डाल कर आग लगा दी। मेरी ननद को नंगा कर उसके साथ बलात्कार किया गया। उसकी गोद में तीन महीने का एक बच्चा था। उन्होंने उस पर पेट्रोल डाल दिया

और बच्चे को उसकी गोद से छीन कर आग में फेंक दिया। मेरे बहनोई के भी सिर पर तलवार से वार किया गया और उसे आग में फेंक दिया गया। उस समय हम एक इमारत में ऊपर छिपे थे। मेरी सास सीढ़ियां नहीं चढ़ पाती थी इसलिये वे भूतल पर अपनी चार साल की पोती के साथ थीं। उन्होंने उनसे सारा पैसा ले जाने और बच्ची को छोड़ देने की प्रार्थना की। उन्होंने पैसा और जेवर ले लिये फिर बच्ची पर पेट्रोल डाल कर जला दिया। मेरी सास से भी बलात्कार किया गया। मैंने यह सब देखा। गली की अविवाहित लड़कियों को नंगा किया गया फिर उनसे बलात्कार कर जला दिया गया। 14 साल की एक लड़की के पेट में लोहे की छड़ घुसेड़ कर मार डाला गया। नरसंहार 2.30 बजे सवेरे समाप्त हुआ। फिर एंबुलेंस आई और मैं अपने पति और बच्चे की लाशों के बगल में बैठी। मेरी दोनों जांघों और बांये हाथ पर चोटों के निशान थे जो पिटाई से बने थे। मेरे पति (48 प्रतिशत जले) और मेरी बेटी (95 प्रतिशत जली) दोनों तीन दिन बाद अस्पताल में मर गये। पुलिस मौके पर थी पर वह दंगाइयों की मदद कर रही थी। हम उनके पैरों पर गिर पड़े पर उन्होंने कहा कि मदद न करने के लिए उनको ऊपर से आदेश थे। चूंकि टेलीफोन तार कटे थे इसलिये हम फायरब्रिगेड को नहीं बुला सकते थे।

(जीनत शेख-सिटिजन्स् इनीशियेटिव को दिया बयान)

शैशव और बढ़ते वर्षो में हिंसा: शिशु हत्या, पोषण आवश्यकताओं को अनदेखा करना, शिक्षा और स्वास्थ्यरक्षा, जल्दी विवाह, लैंगिक उत्पीड़न, निषिद्ध संभोग, शारीरिक हिंसा आदि के रूप में होती है। वयस्कों के तौर पर महिलाओं को अवांछित गर्भ, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न, विवाह में बलात्कार एवं 'इज्जत के नाम पर हत्या' जैसी लैंगिक हिंसा का सामना करना पड़ता है। यदि महिलायें व्याभिचार के माध्यम से सामाजिक सीमाओं को लांघने की कोशिश करें तो परिवार के सदस्यों द्वारा उनकी हत्या कर दी जाती है तथा दूसरी जाति या

धर्म के व्यक्ति से प्यार करने पर बलात्कार का शिकार होना पड़ता है। सती तथा चुड़ैल के नाम पर मार डालने जैसी परंपराओं के कारण युवा एवं वृद्ध महिलाओं को हिंसा झेलनी पड़ती है।

उदाहरण के लिए बिहार में हर साल औसतन 200 महिलायें चुड़ैलों के नाम पर मार डाली जाती हैं। विधवाओं के मामले में आर्थिक स्वतंत्रता और सुरक्षा उनको समय-समय पर इस तरह की हिंसा के जोखिम में डाल देती है।

विकलांग महिलायें भी खासकर परिवार के भीतर और बाहर, दोनों जगह हिंसा का शिकार होती हैं। उनको अक्सर उत्पीड़न और बलात्कार का शिकार होना पड़ता है तथा इसके अलावा जबरिया ट्यूबक्टामी या हिस्टेरेक्टामी के रूप में उनके अधिकारों का उल्लंघन होता है।

जिस तरह महिलायें एक श्रेणी के रूप में समरूप नहीं हैं, उसी तरह हिंसा के उनके अनुभव भी विभिन्न पहचानों के अनुसार बदलते रहते हैं। महिलाओ को जाति-आधारित हिंसा, सांप्रदायिक हिंसा, संघर्ष की स्थिति में हिंसा और 'विकास' एजेंडे के कारण हिंसा का शिकार होना पड़ता है। नीची स्थितियों और अश्पृश्यता के विरुद्ध दलित समुदाय और खासकर दलित महिलाओं के बढ़ते प्रतिरोध के कारण दलित महिलाओं पर हिंसा बढ़ रही है। सितम्बर 1999 में एक दलित महिला को उसके घर से घसीट कर 15 पुरुषों द्वारा मारा-पीटा गया और उसके हाथ काट लिये गये।

2002 के नरसंहार में गुजरात में लड़कियों और महिलाओं के खिलाफ व्यवस्थित लैंगिक हिंसा की गई। बलात्कार का प्रयोग एक औजार के तौर पर एक समुदाय को अपमानित करने और उन्हें कमजोर बनाये रखने के लिए किया गया। कुछ मामलों को छोड़कर अधिकांश मामलों में लैंगिक हिंसा हुई। उत्पीड़ित महिलाओं को नंगा कर घुमाया गया, फिर उनके साथ सामूहिक बलात्कार हुआ और बाद में मारपीट कर हत्या करने के बाद पहचान मिटाने के लिए शव को बुरी तरह जला दिया गया।

जम्मू एवं काश्मीर तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों जैसी संघर्ष की स्थितियों में महिलाओं ने अपने प्रति की जा रही हिंसा के विरुद्ध संघर्ष किया। राज्य की संस्थायें जैसे सेना तथा गैर-सरकारी

वंशानुगत समूह कई दशकों से परस्पर संघर्ष की स्थिति में रहे हैं। महिलाओं को यहां रोज-रोज हिंसा का शिकार होना पड़ा है। काश्मीर में, सेना और उग्रवादियों-दोनों के हाथों महिलाओं को लैंगिक उत्पीड़न, अत्याचार और बलात्कार का बार-बार शिकार होना पड़ा है। भय और असुरक्षा के कारण लड़कियों को स्कूल तक छोड़ना पड़ा है। यही हालत उत्तर-पूर्व के कुछ राज्यों में है। कई अन्य प्रकार के मानवाधिकार उल्लंघन जारी हैं और अक्सर महिलाओं को इनका खामियाजा भुगतना पड़ता है।

> याद रखें! हिंसा केवल शारीरिक हिंसा तक सीमित नहीं है वरन् इसमें राज्य, किसी अन्य व्यवस्था या समुदाय द्वारा जनसंख्या के किसी खास हिस्से का तिरस्कार और उसे अधिकारों से वंचित करना शामिल है।

महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर हिंसा को देखना और उसका शिकार बनना अनेक प्रकार के प्रभाव छोड़ता है। व्यक्तिगत रूप से अत्याचार झेलना, तथा जब ऐसा समुदाय के विरुद्ध हो रहा हो वैसी हालत में असहाय दर्शक बने रहना महिलाओं के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालता है। हिंसा खासकर लैंगिक हिंसा झेल चुके लोगों को अक्सर भय, शर्म, लज्जा और गुस्से का अनुभव होता है। उनमें गहरी सुरक्षात्मक प्रक्रियायें जैसे भूलना, घटनाओं से इनकार या उनको कुचलने जैसी चीजें पैदा हो सकती हैं। मानसिक आघात- हल्के अवसाद, शोक, बेचैनी, फोबिया, शारीरिक समस्याओं तथा गंभीर और दीर्घकालीन मानसिक विकार पैदा होने का कारण बन सकता है। अन्य प्रभावों का परिणाम आत्महत्या भी हो सकता है।

अधिकांश हिंसा असमान शक्ति संबंधों से पैदा होती है, और पितृसत्तात्मक पुरुष वर्चस्व वाली व्यवस्था लगातार महिलाओं और उनके अधिकारों को दबाने के काम में लगी रहती है। वर्तमान संदर्भ में पितृसत्ता ने वैश्वीकृत दुनिया को अपना जोड़ीदार बना लिया है। हिंसा के नये रूप सामने आये हैं पर वे पितृसत्तात्मक समाज में सदियों पुराने भेदभाव पर आधारित हैं। महिलाओं द्वारा प्रयोग किये जाने वाले गर्भनिरोधकों का गहन प्रचार इसका एक उदाहरण है। यह पुरुष को गर्भनिरोध की जिम्मेदारी से मुक्त कर देते हैं और इसका सारा बोझ महिला स्वास्थ्य की कीमत पर उस पर डाल देते हैं। इस प्रकार जहां पुरानी पितृसत्ता उनके शरीर और प्रजनन पर नियंत्रण के संबंध में उसे न्यूनतम अधिकार देती थी, वहीं अब वैश्वीकृत दुनिया उसे गर्भनिरोध की अनेक 'पसंद' प्रदान करती है जो उनके स्वास्थ्य को जोखिम में डालती हैं। उदाहरण के लिए कंडोम और वैसेक्टामी के अलावा अन्य सभी तरीके महिलाओं को ही लक्षित हैं। और पुरुष स्वयं को उपलब्ध दोनों विकल्पों में से किसी को पसंद नहीं करते जिनके कारण

वे असुविधा, आनन्द की कमी तथा नपुंसकता का भय बताते हैं। शुरूआत में इंजेक्शन वाले गर्भनिरोधक जैसे डेपो-प्रोवेरा पुरुषों के लिए लक्षित थे, पर यौनेच्छा की कमी जैसे पार्श्व प्रभावों के कारण उनको बढ़ावा नहीं दिया गया। पर महिलाओं के लिए स्वास्थ्य प्रभाव जो अधिक गंभीर और दर्दनाक हैं, हल्के और 'सामान्य' बताकर अनदेखे किये जा रहे हैं।

तकनीक के आविष्कार के पहले, लड़के की अत्यधिक पसंदगी कन्या शिशु हत्या के व्यवहार से प्रकट होती थी और आज वही पूर्वाग्रह लिंग जांच के लिए तथा बाद में कन्या भ्रूण हत्या एवं गर्भ धारण के पूर्व लिंग निर्धारण तकनीकों के रूप में सामने आते हैं। अल्ट्रासोनोग्राफी मशीनों के वैश्विक निर्माता आज भारत को अपने उत्पादों के मजबूत बाजार की तरह देख रहे हैं, और यह केवल नैदानिक प्रयोग पर आधारित नहीं वरन् लिंग जांच प्रयोग पर भी आधारित है।

हिंसा एक सार्वजनिक स्वास्थ्य मुद्दा

बदले समय के साथ यह अवधारणा भी व्यापक हुई है कि हिंसा क्या है।

इस संदर्भ में हम जहां हिंसा को महिलाओं की स्वास्थ्य चिन्ताओं के तौर पर देख रहे हैं वहीं हम कुछ स्वास्थ्यरक्षा व्यवस्थाओं तथा इस क्षेत्र में वैश्वीकरण एवं निजीकरण द्वारा स्वास्थ्य पर प्रभावों को भी देख रहे हैं। इसलिये सरोकार के तौर पर महिला हिंसा से इनकार नहीं किया जा सकता है और उसका जवाब देने की आवश्यकता है। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के उनके ऊपर अनेक स्वास्थ्य प्रभावों के बावजूद इसे सार्वजनिक स्वास्थ्य में उतना स्थान नहीं मिला जितना मिलना चाहिये। चूंकि स्वास्थ्य रक्षा एक ऐसी व्यवस्था में दी जाती है जो व्यापक समाज और उसमें अंतर्निहित पूर्वाग्रहों और जड़ विश्वासों की अभिव्यक्ति करती है, चिकित्सा व्यवहार भी इनको प्रतिध्वनित तथा मजबूत करते हैं। यह चिकित्सा विशेषज्ञों के व्यवहार में दिखाई देता है, जहां पुरुषों और मध्य वर्ग का वर्चस्व है और जो अक्सर महिलाओं को अकारण हिस्टीरियाग्रस्त मान लेते हैं।

अक्सर स्वास्थ्य विशेषज्ञ या तो हिंसा के शिकार की विशिष्ट आवश्यकताओं को अनदेखा कर देते हैं अथवा उसे हल करने में बहुत थोड़ी संवेदना दिखाते हैं। सेवा प्रदाताओं का मौन अक्सर इस विश्वास के कारण होता है कि हिंसा व्यक्तिगत या पारिवारिक मुद्दा है। समय

और स्थान की सीमायें तथा कानूनी पेचीदगियां और प्रक्रियायें भी अक्सर डाक्टरों को सार्वजनिक स्वास्थ्य मुद्दे के तौर पर हिंसा से निबटने से हतोत्साहित करती हैं। आमतौर से डाक्टर दिखने वाली चोटों और उनकी रिपोर्ट करने तक सीमित रहते हैं।

जहां स्वास्थ्य व्यवस्था द्वारा महिला स्वास्थ्य अधिकारों को नकारने तथा लगातार अनदेखा करने से उनका उल्लंघन होता है वहीं चिकित्सा समुदाय द्वारा निरर्थक और अनावश्यक व्यवहारों जैसे सीजेरियन सेक्शन, हिस्टरेक्टामी, ऊपिस्टामी आदि द्वारा महिलाओं के शरीर और स्वास्थ्य के विरुद्ध लगातार हिंसा की जाती है। प्रसव के दौरान महिलाओं द्वारा कर्मचारियों के खराब व्यवहार और पूर्वाग्रही दृष्टिकोण की जानकारियां प्राप्त हुई हैं जो उनकी पीड़ा को बढ़ा देती हैं। अस्पताल की व्यवस्था महिलाओं के प्रति निरन्तर लापरवाह और निर्वैयक्तिक होती हैं। दूसरी ओर परिवार कल्याण कार्यक्रमों के मामले में उनको प्रमुख निशाना बनाया जाता है।

समय बीतने के साथ महिला शरीरों को अत्यधिक चिकित्सीकृत किया गया, उसे जैसे अनैतिक चिकित्सकीय प्रयोगों, खतरनाक गर्भनिरोध तकनीकों तथा हस्तक्षेप करने वाली प्रक्रियाओं का युद्धस्थल बना दिया गया और उनके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों को बिल्कुल अनदेखा कर दिया गया। बहुत बार गर्भपात कराने वाली महिला को अनिवार्य शर्त के रूप में बंध्याकरण के लिए मजबूर किया जाता है और आपरेशन के बाद होने वाली पेचीदगियों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है।

यहां बताई गई महिला जीवन की सच्चाइयां स्पष्ट रूप से इसे पहचानने और स्वीकार करने की जरूरत बताती हैं कि महिला स्वास्थ्य अधिकांशतः उसकी स्थिति और उत्पादक एवं प्रजनन भूमिकाओं से पूरी तरह अलग है। जब तक, भेदभाव और हिंसा से स्वतंत्रता, सुरक्षित एवं उचित मजदूरी तथा भोजन, पानी और उपयुक्त आवास पर महिलाओं के आधिकारों को सुनिश्चित नहीं किया जाता, महिलाओं का स्वास्थ्य अधिकार प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अगले अध्याय में हम स्वास्थ्यरक्षा व्यवस्था और उन कारणों तथा आयामों का विश्लेषण करेंगे जो स्वास्थ्य रक्षा तक महिलाओं की पहुंच को सीमित करते हैं।

:भाग 2

स्वास्थ्यरक्षा स्थिति का आलोचनात्मक विश्लेषण

भारत में स्वास्थ्यरक्षा संसाधनों का असमान वितरण

भारत में स्वास्थ्यरक्षा संसाधन विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में असमान रूप से फैले हुये हैं और ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों के बीच भारी खाई है। शहरी क्षेत्रों के मुकाबले ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या की तुलना में अस्पताल बिस्तरों का अनुपात पन्द्रह गुना कम है। शहरी जनसंख्या की तुलना में जनसंख्या पर डाक्टरों का अनुपात लगभग 6 गुना कम है। शहरी क्षेत्रों पर खर्च की तुलना में गांवों में सार्वजनिक स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति सरकारी खर्च सात गुना कम है। हालांकि स्वास्थ्यरक्षा पर आबंटन सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत है, कुल खर्च में राज्य का हिस्सा केवल 0.9 प्रतिशत है।

> क्या आप जानते हैं? भारत में सरकार स्वास्थ्य पर केवल 17 प्रतिशत खर्च करती है और 82 प्रतिशत हमारी जेब से खर्च होता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य पर ऐसी असमान और अनुपयुक्त व्यवस्था सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था को प्रभावित कर रही है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था में केन्द्रीय स्थान रखने वाले प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र (पीएचसी) निरन्तर अप्रभावी होते जा रहे हैं। हाल के एक सर्वेक्षण से मालूम हुआ है कि सभी पीएचसी के केवल 38 प्रतिशत में सारा जरूरी स्टाफ है, केवल 31 प्रतिशत में सभी जरूरी सप्लाई (महत्वपूर्ण निवेश के 60 प्रतिशत की तरह परिभाषित) होती है और केवल 3 प्रतिशत पीएचसी में सभी महत्वपूर्ण निवेश का 80 प्रतिशत होता है।

भारत सरकार द्वारा स्वास्थ्य रक्षा सुविधायें सुनिश्चित करने के प्रति प्रतिबद्धता की कमी न केवल लोगों के स्वास्थ्य को जोखिम में डाल रही है वरन् कठिनाइयों के कारण उस

तक पहुंच को मुश्किल बना रही हैं। पहुंच की ये कठिनाइयां भौगोलिक दूरियों, सामाजिक-आर्थिक दूरियों या जेंडर दूरियों के कारण हो सकती हैं।

सारणी 2-वर्तमान ढांचे में स्वास्थ्य सेवा कर्मचारी और जनसंख्या के अनुसार वास्तविक आवश्यकता, 2000-2001

पद	वास्तविक आवश्यकता	कार्यरत	कमी
प्रति सीएचसी एक विशेषज्ञ			
बालरोग विशेषज्ञ	7415	440	90 प्रतिशत
चिकित्सक	7415	704	90 प्रतिशत
स्त्रीरोग विशेषज्ञ	7415	780	89 प्रतिशत
सर्जन	7415	781	89 प्रतिशत
केवल एक डाक्टर प्रति पीएचसी			
डाक्टर	24717	25724	कोईकमी नहीं
मिडवाइफ नर्स-1 प्रति पीएचसी एवं 7 प्रति सीएचसी			
मिडवाइफ नर्स/नर्स	44143/76626	27336	38/64 %
पुरुष एमपीडब्लू-1 प्रति सबसेंटर; एएनएम-1 प्रति सबसेंटर एवं पीएचसी			
पुरुष एमपीडब्लू	148303	71053	52 प्रतिशत
एएनएम	173020	137407	21 प्रतिशत
स्वास्थ्य सहायक	24717	19927	19 प्रतिशत
महिला हेल्थ विजिटर	24717	19855	19 प्रतिशत
एक प्रति पीएचसी एवं सीएचसी			
फार्मेसिस्ट	32132	21118	34 प्रतिशत
लैब टेक्नीशियन	32132	13262	59 प्रतिशत

अक्सर भौगोलिक दूरियां स्वास्थ्य रक्षा तक पहुंच में प्रमुख बाधा होती है। भारत जैसे बड़े देश के सुदूर क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था तक पहुंचने के लिए भी परिवहन सुविधा नहीं मिलती या वह बहुत खराब होती है, अतः वे निरन्तर स्वास्थ्य व्यवस्था के बाहर रहते हैं। सप्लाई पक्ष में सुदूर स्वास्थ्य रक्षा सुविधाओं में उपकरण तथा वहां फिर से सप्लाई अनुपयुक्त होती है, जो लोगों को वर्तमान सुविधाओं के प्रयोग से और हतोत्साहित करती है। चूंकि अनुपयुक्त एवं कम सहायक सुविधायें (जैसे बच्चों के लिए स्कूल, परिवहन, आदि) होने के कारण डाक्टरों और नर्सों को ग्रामीण क्षेत्रों में बने रहने की प्रेरणा नहीं होती अतः उपयुक्त स्वास्थ्य कर्मचारियों की अनुपस्थिति एक और समस्या है। सुदूर खासकर आदिवासी क्षेत्रों में रहने वाली गर्भवती महिलाओं के लिए भौगोलिक दूरियां और महत्वपूर्ण हो जाती हैं तथा यह महिलाओं में उच्च मातृत्व दर का एक कारण है। भौगोलिक दूरियां विकलांग महिलाओं को अधिक प्रभावित करती हैं जिसके कारण स्वास्थ्य सेवाओं तक उनकी पहुंच मुश्किल होती है। आना-जाना सीमित होने के कारण साधारण स्वास्थ्य समस्याओं के लिए भी महिलाओं का सुदूर स्वास्थ्य व्यवस्था तक पहुंचना मुश्किल होता है।

लगभग आधी महिलायें (47 प्रतिशत) उन गांवों में रहती हैं जहां किसी प्रकार की स्वास्थ्य सुविधा है। 14 प्रतिशत महिलाओं को निकटस्थ स्वास्थ्य केन्द्र पहुंचने के लिए कम से कम 5 किलोमीटर चलना होता है। सारणी 3 के अनुसार अधिक स्वास्थ्य केन्द्रों की आवश्यकता स्पष्ट है।

आर्थिक सीमाओं के कारण सामाजिक-आर्थिक दूरी में स्वास्थ्यरक्षा की लागत तथा शिक्षा की कमी, संस्कृति के अनुसार उपयुक्त सेवाओं की कमी, भाषा/प्रजातीय बाधायें एवं सेवा प्रदाताओं के पूर्वाग्रह शामिल हैं। इन सारे आयामों के कारण स्वास्थ्य समस्याओं को पहचानने और हाशिये वाले समुदायों की गरीब महिलाओं के लिए उपयुक्त देखभाल की मांग करने में अक्षमता पैदा होती है। अक्सर गांवों के दलित क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधायें उपलब्ध नहीं कराई जाती हैं। अधिकांश स्वास्थ्य सेवा प्रदाता ऊंची जातियों के होते हैं और गरीबों खासकर दलित महिलाओं के प्रति उनका नजरिया अत्यधिक भेदभाव वाला होता है।

पहुंच की समस्या जेंडर के कारण और गंभीर हो जाती है। जेंडर के आधार पर भेदभाव महिलाओं को विभिन्न बीमारियों तथा उनसे जुड़ी रुग्णता और मृत्यु के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है। पुरुषों की तुलना में वे सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से नीची स्थितियों में हैं।

सारणी 3. 15-49 आयुवर्ग वाली कभी विवाहित रही महिलाओं की स्वास्थ्य केन्द्रों तक पहुंच

स्वास्थ्य सुविधा से दूरी, भारत 1998-99

दूरी	स्वास्थ्य सुविधा					
	पीएवसी	सबसेंटर	पीएवसी/सबसेंटर	अस्पताल	डिस्पेंसरी/क्लीनिक	अन्य
गांव के भीतर	13.1	33.0	36.5	9.7	28.3	47
5 किमी से कम	28.4	39.7	40.8	25.0	32.4	38.9
5-9 किमी	29.2	16.3	15.3	25.1	17.4	9.7
10 किमी से अधिक	28.8	9.6	7.0	40.0	21.7	3.9
पता नहीं/नहीं	0.5	1.4	0.3	0.2	0.2	0.2
कुल प्रतिशत	100	100	100	100	100	100
औसत	4.9	1.3	1.0	6.7	2.4	0.0

महिलाओं को अक्सर निर्णय लेने से अलग रखा जाता है, जमीन तथा अन्य संसाधनों तक उनकी पहुंच सीमित होती है और आने-जाने पर नियंत्रण होते हैं। उनको अक्सर परिवार, समुदाय और राज्य के विभिन्न सामाजिक ढांचों से हिंसा का खतरा रहता है। इस निरन्तर दोयम दर्जे के कारण, महिलाओं द्वारा अपनी स्वास्थ्य समस्याओं के लिए जल्दी तथा उपयुक्त उपाय तलाश करने की संभावना कम होती है, चाहे उनका पारिवारिक सामाजिक स्तर कुछ भी हो। स्वास्थ्य रक्षा प्राप्त करने में यह भेदभाव तब अधिक होता है जब महिलायें अशिक्षित, बेरोजगार, अकेली या दूसरों पर निर्भर हों। खराब स्वास्थ्य के बोझ, सहायक व्यवस्थाओं की अनुपस्थिति और जेंडर संबंधी दूरी से इतर यह स्वास्थ्य व्यवस्था से महिलाओं के अलगाव का एक और कारण बनता है।

मीना की कहानी

मीना, तमिलनाडु के समुद्रतटीय नागापट्टिनम जिले के पुष्पवनम् गांव में रहती थी। उसका पति एक मछुवारा था और एक कट्टामारन (बड़ी नाव) का मालिक था। परिवार की आर्थिक स्थिति लगभग ठीक थी। मीना उसकी दूसरी पत्नी थी। वह 40 साल का था जब उसने शादी के लिए मीना का हाथ मांगा। वह 15 साल की थी। उसके माता-पिता ने खुशी से इसे मान लिया और उनकी शादी हो गई। शादी के चार महीने बाद मीना गर्भवती हो गई। गांव के स्वास्थ्य केन्द्र पहुंचने के लिए बलुये तट पर 8 किलोमीटर पैदल चल कर मुख्य सड़क पर पहुंचना होता था जहां बसें मिलती थीं। उसके साथ स्वास्थ्य केन्द्र तक जाने वाला कोई नहीं था। उसका पति समुद्र पर व्यस्त रहता था। अपने आप स्वास्थ्य केन्द्र तक पहुंचने में मीना को दिक्कत होती थी। लड़कियों और महिलाओं को अकेले यात्रा की अनुमति नहीं थी।

पुष्पवनम् गांव में कभी भी ग्राम नर्स नहीं आती थी। गांव के बुजुर्गो और नेताओं ने मांग की थी कि गांव में एक सबसेंटर/नर्स की जरूरत थी पर गरीब मछुआरों की बात पर कौन ध्यान देगा।

मीना का पहला बच्चा मरा पैदा हुआ। उसके बाद दो लड़कियां और आखिर में एक लड़का हुआ। हर आदमी ने कहा कि परिवार की प्रार्थनायें सुनी गई। सभी प्रसव घर पर हुये। इसी के साथ मीना का स्वास्थ्य खराब हो गया। वह सुख कर कांटा हो गई। वह अक्सर बेहोश होकर गिर जाती थी।

वह जानती थी कि उसे इलाज के लिए स्वास्थ्य केन्द्र जाना चाहिये पर घर पर हालात बहुत अच्छे नहीं थे। चूंकि वह दूसरी पत्नी थी इसलिये उसके पति के रिश्तेदार उससे बात भी नहीं करते थे। उसे बाहरी और दुश्मन समझा जाता था। उसने यह अफवाहें सुनी थीं कि उसके पति के संबंध दूसरी जवान औरत से थे।

जब लड़का चार साल का था वह गर्भवती हो गई। उसे डर था कि अगर जल्दी ही उसे दूसरा बच्चा हुआ तो उसका स्वास्थ्य और बिगड़ जायेगा। उसने गर्भपात का फैसला किया और एक बूढ़ी औरत के पास गई जो गर्भपात कराती थी।

कोई और इसके बारे में नहीं जानता था। एक हफ्ते बाद उसे संक्रमण के कारण बुखार हो गया। मीना ने किसी से कुछ नहीं बताया। उसकी हालत बिगड़ गई। उसके पति समुद्र पर थे और घर पर लोग नहीं जानते थे कि क्या किया जाये। बिना उसके पति से पूछे उन्हें मीना को स्वास्थ्य केन्द्र ले जाने की इच्छा नहीं थी। आखिरकार इसमें काफी खर्चा था। मीना को बहुत दर्द हुआ और वह उसी रात मर गई। वह 26 साल की थी।

सांप्रदायिक दंगों या संघर्ष की स्थिति में स्वास्थ्य रक्षा तक पहुंच सीमित होती है। ऐसी स्थिति में भौगोलिक और जेंडर संबंधी दूरियां महिलाओं की स्वास्थ्य रक्षा तक पहुंच को प्रभावित करती हैं। पहुंच न होने के उपरोक्त तथ्यों के अलावा महिलायें स्वयं को मिलने वाली सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता से असंतुष्ट हो सकती हैं। इसके कारणों में सेवाओं और दवाओं के दाम, स्वास्थ्य कर्मचारियों के अनुपयुक्त और रूखे व्यवहार, स्टाफ की कमी, स्वास्थ्य सुविधा का समय, दवाओं और अन्य सामग्रियों की कमी और डाक्टर से मिलने में लंबी प्रतीक्षा शामिल हैं। सांस्कृतिक सीमाओं के कारण महिलाओं को पुरुष स्वास्थ्य प्रदाताओं से सलाह लेने को प्रोत्साहित नहीं किया जाता है और महिला डाक्टरों, नर्सों और मिडवाइफों की अनुपलब्धता स्वास्थ्य केन्द्र की उनकी पसंद को प्रभावित करती है। अक्सर महिलायें किसी को साथ ले जाना पसंद नहीं करती हैं और विरले ही स्वास्थ्य केन्द्र जाती हैं। स्वास्थ्य केन्द्र जाने के लिए महिलाओं से अपने पति या परिवार के अन्य सदस्यों से अनुमति लेने की आशा भी की जाती है।

दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में अनुपयुक्त स्थान और सहायक सुविधाओं की कमी ग्रामीण क्षेत्रों में महिला स्वास्थ्य प्रदाताओं की घटती संख्या की जिम्मेदार है।

वैश्वीकरण, निजीकरण और स्वास्थ्यरक्षा तक महिलाओं की पहुंच

इसके साथ-साथ नीतियों की दिशा में परिवर्तन और प्रतियोगिता के सिद्धान्त तथा निजीकरण ने पूंजी के वर्चस्व वाले रोगों के इलाज को प्रमुखता देने वाली चिकित्सा को रोग निवारक चिकित्सा के स्थान पर बढ़ावा दिया है। मुनाफा कमाने की ओर उन्मुख कार्पोरेट स्वास्थ्यरक्षा सेवायें जो शहरी, अभिजात और पुरुष पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हैं, न केवल अनावश्यक निदान और स्क्रीनिंग जांचों तथा इलाज की भारी लागत,

आदि अनैतिक व्यवहारों को बढ़ावा दिया है बल्कि यह सार्वजनिक क्षेत्र खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षित चिकित्सा कर्मियों की उपलब्धता को भी कम करेगी। इन प्रक्रियाओं ने आमतौर से गरीबों और खासकर महिलाओं के दरिद्रीकरण को और बढ़ावा दिया है।

बढ़ती हुई असमानता की इस समग्र तस्वीर के बावजूद, दानदाताओं द्वारा नीतिगत सुधारों के तौर पर 'ढांचागत व्यापक दृष्टिकोणों' (स्वैप) को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया है। यह सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं में गिरावट से निबटने, कीमतें कम करने या व्यापक पैराडाइम परिवर्तनों के लिए मजबूत आधार तैयार करने में अक्षम रहा है। उदाहरण के लिए आरसीएच कार्यक्रम अपनी प्रभावशीलता के लिए सबसेंटरों के सार्वजनिक स्वास्थ्य ढांचे, पीएचसी और अस्पतालों तथा कर्मचारियों और सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था के प्रबंधन निवेश पर निर्भर करता है। यह व्यवस्था इस काल में प्रमुख नकारात्मक परिवर्तनों से गुजरी है क्योंकि वैश्विक शक्तियों के इशारे पर चयनित प्राथमिक स्वास्थ्यरक्षा दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है। इस पूरे समय में स्वास्थ्यरक्षा क्षेत्र लगातार पूरी अर्थव्यवस्था में ढांचागत समायोजन से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में प्रभावित हो रहा था। सार्वजनिक स्वास्थ्य पर वास्तविक खर्च ठहर गया था तथा प्रयोगकर्ता फीस लगाने से ढांचे का पतन हो गया था। संभवतः स्वास्थ्य लागत में सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन दवा उद्योग के उदारीकरण से आया जिसका परिणाम दवा के दामों में तेज वृद्धि थी। इन तेजी से बढ़ती कीमतों ने पहुंच पर बहुत प्रभाव डाला। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार इलाज न करवाने के 'वित्तीय कारण' तेजी से बढ़े हैं।

अब न केवल निजी क्षेत्र बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं का अधिक प्रयोग खाते-पीते लोग कर रहे हैं। मोटेतौर पर इसलिये कि सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं की बढ़ती कमजोरी और तुलनात्मक रूप से सार्वजनिक और निजी

क्षेत्र के बीच कीमतों में अन्तर घटने के कारण, लगभग 70 प्रतिशत बिना भर्ती वाले मरीजों की देखभाल निजी क्षेत्र द्वारा की जाती है। पर, आंशिक रूप से कीमतों में अधिक अन्तर के कारण अस्पताल में भर्ती होने वाले मरीजों का केवल 40 प्रतिशत निजी क्षेत्र में जाता है।

हाल के वर्षों में, भारत में बहुत सी संक्रामक बीमारियों का फिर से उभार हुआ है जैसे मलेरिया, इन्सिफेलाइटिस, कालाजार, डेंगू, आदि। दस्त, पेचिश, श्वसन तंत्र के तीव्र संक्रमण, और दमा जैसी ठीक होने वाली बीमारियां भी कमजोर सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था के कारण घातक सिद्ध हो रही हैं।

सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था की यह व्यवस्थागत विफलता, ढांचागत हिंसा की अनेक गतिविधियों में दिखाई देती है जो व्यक्तिगत एवं सामूहिक अधिकारों का उल्लंघन है तथा जिसके कारण निम्न प्रभाव दिखाई देते हैं-

- स्वास्थ्य रक्षा व्यवस्थाओं में एक प्रकार का अन्तर-एक अमीरों के लिए और दूसरी गरीबों के लिए जो दो समूहों के बीच ध्रुवीकरण को और बढ़ा रहा है।
- बजटों में कमी या ठहराव, सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था में देखभाल की गुणवत्ता में गिरावट जो व्यवस्थागत कमजोरी का कारण बनी है।
- उत्पीड़क, मुनाफा कमाने वाले निजी क्षेत्र का उभार जिससे गरीब मुश्किल से इसका खर्च उठा पाते हैं और उनकी कर्जदारी में बढ़ोत्तरी हो रही है।
- वैश्वीकरण-उदारीकरण-निजीकरण नीतियों का विभिन्न सामाजिक क्षेत्र सेवाओं पर नकारात्मक प्रभाव।
- सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं से राज्य निवेश की धीरे-धीरे वापसी, चयनित प्राथमिक स्वास्थ्यरक्षा कार्यक्रम।
- अनियंत्रित निजी चिकित्सा क्षेत्र का विस्तार। आधारभूत समग्र कार्यक्रमों में सार्वजनिक क्षेत्र कर्मियों द्वारा अपने दायित्वों के निर्वहन में विफलता के कारण अपरिवर्तनीय रूप से निजी क्षेत्र के लिए एक बड़ा 'बाजार' बन गया है। यह वर्तमान स्थितियों में उत्पीड़न

झेल रहे गरीबों पर बोझ का बढ़ना है जिसने बीमारियों के इलाज को दहेज के बाद ग्रामीण कर्जदारी का दूसरा सर्वाधिक सामान्य कारण बना दिया है।

अनेक राज्यों में हेल्थ सिस्टम डेवलमेंट प्रोजेक्ट के माध्यम से विश्व बैंक गरीबी हटाने के नाम पर पूरे देश में स्वास्थ्य क्षेत्र का पुनर्गठन कर रहा है। अंतर्राष्ट्रीय बैंकों द्वारा भारत को निजीकरण को बढ़ावा देने के माध्यम से स्वास्थ्य पर सार्वजनिक खर्च कम करने को प्रेरित किया जा रहा है। विश्व बैंक/अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष द्वारा लगाई शर्तों के बाद केन्द्र सरकार के बजट में स्वास्थ्य सेवाओं के आबंटन में 20 प्रतिशत की कमी आई है जिससे सार्वजनिक क्षेत्र का लगातार हाशिये पर पहुंचना और निजी क्षेत्र का विस्तार जारी रहा है।

स्वास्थ्य और स्वास्थ्यरक्षा असमानतायें बढ़ रही हैं और ये अत्यधिक अन्यायपूर्ण हैं। एक न्यायोचित स्वास्थ्य व्यवस्था सुनिश्चित करेगी कि सभी नागरिक जरूरत के समय गुणवत्तापूर्ण आधारभूत स्वास्थ्यरक्षा प्राप्त करें चाहे उनकी जाति, वर्ग, जेंडर और लैंगिकता कुछ भी हो। राज्य की ओर से प्रतिबद्धता का अभाव पहले से ही गरीब देश की जनता को और गरीब बना रहा है। इसके कुछ प्रमुख कारण हैं-

0 अस्पताल में भर्ती 40 प्रतिशत लोगों को खर्चे पूरे करने के लिए पैसा उधार लेना पड़ता है या संपत्ति बेचनी पड़ती है।

0 दवा उद्योग तेजी से बढ़ रहा है इसके बावजूद जरूरत होने पर जनसंख्या के केवल 20 प्रतिशत की ही पहुंच सभी जरूरी दवाओं तक है। यह दवा उद्योग पर नियंत्रण हटाने तथा दवाओं पर मूल्य नियंत्रण ढीला करने का नतीजा है। यहां ब्रांड नामों की घुसपैठ हो गई है और भारत में 70000 से अधिक ब्रांडों की बिक्री हो रही है, पर 2002 की दवा नीति में केवल 25 दवाओं को (1979 में 343 दवाओं पर मूल्य नियंत्रण की तुलना

में) मूल्य नियंत्रण में रखने का सुझाव है। इसके परिणामस्वरूप बहुत सी दवायें 200 से 500 प्रतिशत मुनाफे पर बेची जा रही हैं और 1999-2000 में आवश्यक दवायें केवल 49 प्रतिशत जनसंख्या की पहुंच में थीं।

ट्रिप्स का दवा नीतियों पर प्रभाव, बढ़ते मूल्य, स्वास्थ्यरक्षा में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका एवं महिला स्वास्थ्य पर उसके प्रभाव

स्वास्थ्यरक्षा में समानता को बढ़ावा देने के लिए दवा उद्योग पर मूल्य नियंत्रण एक महत्वपूर्ण औजार है। भारत सरकार की 2002 की दवा नीति ने मूल्य नियंत्रण को अप्रासांगिक लगभग 30 दवाओं तक सीमित रख कर, दवाओं पर मूल्य नियंत्रण को कमजोर करने का प्रयास किया है। मूल्य नियंत्रण के अंतर्गत जिस प्रकार की दवायें बचेंगी वह जनस्वास्थ्य के लिए मोटेतौर से अप्रासांगिक हैं। यहां तक कि 1995 के दवा मूल्य नियंत्रण आदेश ने एनीमिया, दस्तरोग तथा ट्यूबरकुलोसिस, उच्च रक्तचाप और मधुमेह की अधिकांश तथा कैंसर की सभी दवाओं को जानबूझ कर छोड़ दिया।

दवा मूल्यों के विरुद्ध जनहित याचिका

दवा नीति 2002 में दवा मूल्य नियंत्रण आधार की बुद्धिमत्ता पर सवाल उठाते हुये सुप्रीम कोर्ट में सितम्बर 2003 में लोकास्ट, जन स्वास्थ्य सहयोग, आल इंडिया ड्रग एक्शन नेटवर्क और मेडिको फ्रेंड सर्किल ने अनेक शपथपत्र पेश किये। हमारा तर्क था कि नीति दवाओं के दाम बढ़ा देगी और इस प्रकार इसका जनता खासकर गरीब लोगों के स्वास्थ्य पर दीर्घकालीन प्रभाव पड़ेगा। सुप्रीम कोर्ट के संबंधित आदेश 10/3/2003 में कहा गया, 'हम निर्देशित करते हैं कि याचिकाकर्ताओं को इस पर विचार करना और उपयुक्त आधार बनाना सुनिश्चित करना चाहिये कि आवश्यक तथा जीवनरक्षक दवायें मूल्य नियंत्रण के बाहर न रह ज़ायें...'

2006 में एक नई नीति आई जिसका केवल पहला भाग ही जारी किया गया है। दूसरा भाग मूल्य नियंत्रण से संबंधित होगा और नये आधारों का अभी पता नहीं है।

यह मुकदमा बहुत महत्वपूर्ण समय पर आया है जब भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था अभी पुरानी बीमारियों से ही निबट रही है जबकि नई बीमारियों जैसे एचआईवी/एड्स, मधुमेह, दिल के रोगों ने बीमारियों का भार बढ़ा दिया है। इस मुद्दे को जनवरी 2005 से प्रभावी डब्लूटीओ/ट्रिप्स की उत्पाद पेटेंट व्यवस्था ने और पेचीदा बना दिया है।

व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार (ट्रिप्स) समझौते ने भारत में दवा मूल्यों और दवा नीतियों को नकारात्मक तरीके से प्रभावित किया है। दवाओं का मुद्दा स्वास्थ्य से हटकर व्यापार के क्षेत्र में पहुंच गया है-यह स्थिति बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियों के उभार से और खराब हुई है, जो बौद्धिक संपदा अधिकारों के नाम पर ज्ञान पर अपना नियंत्रण और स्वामित्व बनाने का प्रयास कर रही हैं। वास्तव में ट्रिप्स के प्राविधान उन प्रक्रियाओं को ही नुकसान पहुंचाने का प्रयास कर रहे हैं जिन्होंने भारत को दवा निर्माण में चोटी के देशों में पहुंचाने में मदद की है जहां दुनिया में कुछ दवाओं के दाम सबसे कम हैं। यह प्रभाव सरकार द्वारा दवा नीतियों को पुनर्गठित करने और इंडियन ड्रग एंड कास्मेटिक्स एक्ट में संशोधन करने के प्रयासों में दिखाई दे रहा है, ताकि मूल्य नियंत्रण के अंतर्गत दवाओं की संख्या कम की जा सके और उदारीकरण के नाम पर दवाओं की जांच के लिए जगह बनाई जा सके। भारत के लिए इसका अर्थ, भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र, लघु क्षेत्र का सफाया; भारी संख्या में आवश्यक एवं जीवनरक्षक दवाओं के अत्यधिक दाम तथा पहले से ही जोखिम वाली जनसंख्या खासकर महिलाओं को दवा कंपनियों के अनैतिक व्यवहारों के लिए खोल देना होगा। गरीबों की सर्वाधिक संख्या यानी महिलाओं के लिए, दवाओं के अधिक दामों का मतलब जीवनरक्षक दवाओं का भुगतान करने के लिए घर के खर्चों को घटाना है। प्रभावी रूप से यह गरीबों को बाहर कर देता और उनको जरूरी स्वास्थ्यरक्षा तथा जीवनरक्षक औषधियों से वंचित कर देता है।

इस प्रकार, जब हम स्वास्थ्यरक्षा सेवाओं की बात करते हैं यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि हम न केवल अनुपयुक्तता की बात करें बल्कि महिलाओं के आम और स्वास्थ्य के खास मुद्दे

समझने में संवेदनहीनता पर भी गौर करें। ऐसा इसलिये कि सरकारी योजनाकार और महिलाओं का 'इलाज' करने वाले चिकित्सा कर्मचारी दुनिया का समानतावादी नजरिया नहीं रखते और अक्सर उनकी शिकायतों को 'अस्पष्ट' और 'काल्पनिक कहानी' समझते हैं। इसके साथ ही एक 'समूह' के तौर पर महिलाओं की बात करना समस्या पैदा करने वाला हो सकता है क्योंकि अकेली, लेस्बियन, परित्यक्ता महिलाओं से अलग प्रकार का व्यवहार होता है। यहां, मानसिक-स्वास्थ्य रोगियों और हिंसा का शिकार लोगों के साथ किये जाने वाले अलग व्यवहार की बात करना भी अनुचित नहीं होगा। इसमें जाति, वर्ग और महिलाओं के नीचे दर्जे के कारण पैदा असमानताओं को जोड़ने पर आमतौर से महिलाओं की स्वास्थ्यरक्षा तक पहुंच निर्धारित होती है।

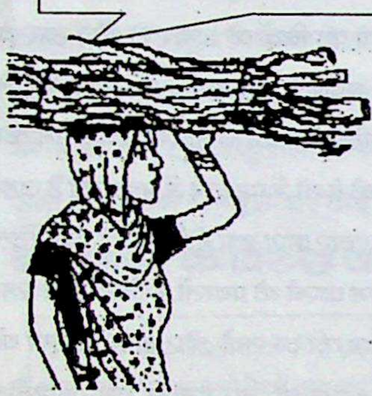

भाग 3

महिला स्वास्थ्य पर प्रभाव

महिलायें घरों और समाज में जिस तरह का भेदभाव और हिंसा झेलती हैं उसके उनके स्वास्थ्य पर भयंकर नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं। यह जेंडर संवेदनशील स्वास्थ्य योजना और उसके क्रियान्वयन की कमी के कारण और पेचीदा हो जाती है, जो महिलाओं के जीवन की असलियत को अनदेखा करती है। पिछले भागों से स्पष्ट है कि महिला को उसके जीवन भर भोजन, पानी, उपयुक्त आवास आदि संसाधनों तक पहुंच के मामलों में भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। वे जिस माहौल में रहती हैं, वह तथा काम का बोझ उसके स्वास्थ्य पर खास प्रभाव डालता है। इस भाग में हम इनके फलस्वरूप पैद होने वाली कुछ स्वास्थ्य समस्याओं पर गौर करेंगे।

1. रुग्णता और मौत

जैसा राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति में स्वीकार किया गया है, देश में रुग्णता और मौत का स्तर अस्वीकार्य रूप से अधिक है। ये असंतोषजनक स्वास्थ्य संकेतक आम जनसंख्या की रोग निवारक तथा रोग चिकित्सा करने में सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था की सीमित पहुंच की ओर इशारा करते हैं।

महाराष्ट्र में किये एक खास अध्ययन से पता चलता है कि प्रजनन समस्यायें, मूत्र तंत्र संक्रमण, दर्द व ऐंठन और कमजोरी; रुग्णता का 47 प्रतिशत है। गर्भावस्था, गर्भपात और प्रसव से संबंधित मातृत्व मृत्यु बहुत ही ज्यादा है।

फलस्वरूप पैदा होने वाला दीर्घकालिक एनीमिया (खून की कमी) महिलाओं के खराब स्वास्थ्य के साथ जुड़ कर भारतीय

गर्भावस्था और प्रसव के दौरान उपयुक्त देखभाल की कमी, और गड़बड़ियों का पता लगाने तथा उनका प्रबंधन करने वाली सेवाओं की अनुपयुक्तता अधिकांश मातृत्व मौतों का कारण है। अकेले गर्भावस्था संबंधी गड़बड़ियों के कारण लगभग 50 लाख औरतों का स्वास्थ्य खराब है। एक अध्ययन के अनुसार भारत में सभी गर्भवती महिलाओं के 37 प्रतिशत को कोई प्रसव-पूर्व देखभाल नहीं मिलती है।

महिलाओं में उच्च रुग्णता और मृत्यु का कारण बनता है। बीएमआई (शरीर भार सूचकांक) के अनुसार भारत में 15-49 वर्ष आयुवर्ग की हर 3 महिलाओं में 1 कुपोषित है।

शायद महिलाओं में एनीमिया, उत्पादकता और विकासशील देशों मे परिवार कल्याण की भारी कमी का कारण हो। आयोडीन की कमी से होने वाली गड़बड़ियां खास चिन्ता का विषय हैं क्योंकि यह मां और शिशुओं में प्रजनन परिणामों को गंभीर नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

13-19 वर्ष आयुवर्ग की काफी लड़कियों (17 प्रतिशत) की शादी हो जाती है और उनके बच्चे होने लगते हैं। गर्भनिरोधकों की जरूरतें पूरी न होने तथा पसंदगी की कमी होने और गर्भनिरोधकों के प्रयोग में सूचना और/या निर्णय लेने की शक्ति न होने के कारण महिलायें जल्दी-जल्दी गर्भवती होती हैं। लगभग 37 प्रतिशत प्रसव पिछले प्रसव के दो साल के भीतर हो जाते हैं जिससे मां और शिशु, दोनों का स्वास्थ्य खराब होता है। शोध ने दिखाया है कि अनेक गर्भावस्थायें और जल्दी-जल्दी प्रसव मां के पोषण स्तर को खराब करते हैं तथा गर्भावस्था के परिणाम पर विपरीत प्रभाव डालते हैं (जैसे समय से पूर्व प्रसव, शिशु का कम भार) और मां के स्वास्थ्य के लिए जोखिम बढ़ा देते हैं।

दुनिया में सर्वाधिक मातृत्व मृत्यु के मामले में भारत दूसरे स्थान पर है। यह आंकड़ा लगातार बढ़ रहा है, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस-2) से पता चलता है कि

यह प्रति 10000 जीवित प्रसव पर 1991 में 424 से बढ़ कर 1997-98 मे 540 हो गया तथा 2000 तक स्थिर रहा। गिनतियों में इसका अर्थ, हर पांच मिनट में एक औरत की मौत है जिसके मुख्य कारण सेप्सिस संक्रमण, रक्तस्राव, इक्लैम्पिसया, बाधित प्रसव, गर्भपात

और एनीमिया हैं; पर, सर्वेक्षण अनुमानों में व्यापक भिन्नतायें हैं। राष्ट्रीय पंजीकरण व्यवस्थायें और व्यक्तिगत शोध सभी बहुत ऊंचे आंकड़ों का संकेत करते हैं। इसके अलावा भारत में राज्यों के भीतर, विभिन्न समुदायों और भौगोलिक क्षेत्रों के बीच व्यापक भिन्नतायें मौजूद हैं। बेहतर प्रसव-पूर्व देखभाल तथा संस्थागत प्रसव के चलते कुछ दक्षिण भारतीय राज्य, 115 (तमिलनाडु) और 198 (केरल) तक पहुंचे हैं जबकि उत्तरी भारत में मातृत्व मृत्यु अनुपात निराशाजनक रूप से 707 और 367 के बीच है (एनएफएचएस-2)।

1971 से एक चिकित्सकीय गर्भ समापन कानून होने के बावजूद, हर साल लगभग 4-6 मिलियन अवैध गर्भपात कराये जाते हैं। जहां इनमें से 6-9 प्रतिशत किशोरी लड़कियां होती हैं वहीं 16 प्रतिशत 20-34 वर्ष आयुवर्ग वाली महिलायें होती हैं।

इसके साथ ही, शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण महिलाओं को प्रसव-पूर्व देखभाल मिलने की संभावना बहुत कम (42 और 18 प्रतिशत) होती है। यह गंभीर विचार का विषय है कि बचपन से ही कन्या शिशु की पोषण आवश्यकताओं तथा स्वास्थ्यरक्षा पर अधिक ध्यान देकर, खासकर आवश्यक एवं आपातकालीन प्रसव देखभाल, कुशल प्रसव सहायता, प्रसव-पूर्व तथा समुचित प्रसव-पश्चात देखभाल द्वारा; इन मौतों को रोका जा सकता है। न केवल गर्भावस्था और प्रसव महिलाओं के लिए बहुत जोखिम वाले बने हुये हैं बल्कि जल्दी विवाह, बार-बार प्रसव और जीवन भर झेलने वाले भेदभावों के कारण प्रजनन तंत्र संक्रमण, एसटीआई, यूटिराइन प्रोलैप्स आदि नकारात्मक स्वास्थ्य परिणाम होते हैं।

महिलाओं में खराब स्वास्थ्य स्तर, कुछ समुदायों के सदस्य होने के कारण उनके सामाजिक और आर्थिक नुकसानों से और पेचीदा हो जाता है। ऊंची जाति की महिलाओं

की तुलना में दलित महिलाओं के दीर्घकालीन कुपोषण से पीड़ित होने (लंबाई कम होने) की संभावना डेढ़ गुना अधिक होती है। दूसरे समूहों की तुलना में तीन वर्ष से कम आयु वाले आदिवासी और दलित बच्चों में कुपोषित होने की संभावना दूनी अधिक होती है।

मातृत्व मौतों का 9 प्रतिशत असुरक्षित गर्भपात के कारण होता है तथा इससे अनेक दूसरे प्रकार की रुग्णता भी हो जाती है (एनजीओ द्वारा किये कुछ अध्ययनों के अनुसार)।

2. संक्रामक बीमारियां

खराब पोषण स्तर, मातृत्व एवं खराब प्रसव-पूर्व स्वास्थ्य के अलावा मलेरिया, कालाजार, डेंगू, लेप्टोस्पाइरोसिस आदि संक्रामक बीमारियां महिलाओं पर बीमारियों के भारी बोझ में काफी योगदान करती हैं।

ट्यूबरकुलोसिस- यह आमतौर से महिलाओं, खासकर प्रजनन आयुवर्ग वाली महिलाओं में सर्वाधिक घातक है। संक्रमण से बीमारी तक परिवर्तन और इसके प्रभावों की जड़ें न केवल जीवविज्ञान में वरन् पर्यावरण तथा जीवन की सामाजिक और भौतिक स्थितियों में भी हैं। जब महिलायें संक्रमित हो जाती हैं तो इलाज के लिए उनको मायके भेज दिया जाता है या अलग-थलग कर दिया जाता है। गैर-श्वसन टीबी, खासकर प्रजनन-मूत्र तंत्र की टीबी का निदान आमतौर से मुश्किल है और निदान हो जाने पर भी इसका इलाज नहीं होता है। यह वंध्यापन का कारण हो सकता है जिसके महिलाओं पर गंभीर परिणाम होते हैं और उनको अपरिवर्तनीय रूप से बहिष्कृत या अलग-थलग कर दिया जाता है। घर पर सहायक व्यवस्था की कमी और वित्तीय संसाधनों के प्रयोग में निर्णय लेने की ताकत न होने के कारण महिलायें गुणवत्तापूर्ण देखभाल से वंचित रहती हैं।

मलेरिया- लगभग 2 मिलियन की वार्षिक प्रकोप दर पर स्थिर होने के बाद 80 के दशक में इसमें पुनः उभार हुआ। यह महिलाओं को विभिन्न तरीकों से प्रभावित करता है। मलेरिया खासकर फैल्सीपेरम मलेरिया का पहले से खून की कमी का शिकार महिलाओं में बार-बार हमला एनीमिया को और बिगाड़ देता है। गर्भवती महिलाओं में मलेरिया के कारण गर्भपात, समय-पूर्व प्रसव पीड़ा और प्रसव, मृत शिशु या प्रसव के समय शिशु का कम भार

सफाई, कूड़ा भंडारण तथा निस्तारण सुविधाओं की कमी के कारण जल स्रोत प्रदूषित होते हैं। इसके अलावा, कीटनाशकों और रासायनिक खादों के अंधाधुंध इस्तेमाल तथा अशोधित सीवेज, गंदे पानी और औद्योगिक कचरे को बहाने से बहुत सी नदियां, तालाब और झरने प्रदूषित हो गये हैं। यह महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए बड़ा खतरा है। रासायनिक प्रदूषण से अनेक त्वचा रोग और नई बीमारियां बढ़ रही हैं।

आदि होते हैं। फैल्सीपेरम मलेरिया का संक्रमण होने पर हाइपोग्लाइसीमिया (रक्त ग्लूकोज स्तर में गिरावट) हो सकता है जो फौरन ध्यान न दिये जाने पर घातक हो सकता है। उनको मौत का जोखिम भी अधिक होता है क्योंकि मलेरिया के मूलभूत इलाज के लिए आवश्यक मानी जाने वाली प्राइमाक्वीन गर्भवती महिलाओं के लिए हानिकारक हो सकती है। पिछले वर्षों में मलेरिया के कुछ मामलों में अधिक घातक पी-फैल्सीपेरम मलेरिया के प्रकोप में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जिसका परिणाम मलेरिया से अधिक मौतों के रूप में सामने आया है।

कुष्ठ-दुनिया भर के कुल रोगियों में 58 प्रतिशत भारत से हैं। टीबी की तरह कुष्ठ भी न केवल एक चिकित्सकीय बीमारी के रूप में आता है वरन् इससे असाधारण मनोवैज्ञानिक आघात तथा सामाजिक कलंक भी पैदा होता है। अधिकांशतः कुष्ठ से पीड़ित महिलाओं का परित्याग कर दिया जाता है। दुख की बात है कि कुष्ठ संक्रमण को कानूनी व्यवस्था द्वारा तलाक प्राप्त करने का आधार मान लिया गया है जो महिलाओं के जोखिम को और बढ़ा देता है।

इसी प्रकार जल से फैलने वाले आम संक्रमण जैसे गैस्ट्रोइंटराइटिस, कालरा, हेपेटाइटिस के कुछ रूप, आदि जनसंख्या में रुग्णता के उच्च स्तर में अपना योगदान करते हैं। उदाहरण के लिए भीड़भाड़ और आपस में सटे मकानों वाली आवासीय परिस्थितियां, ट्यूबरकुलोसिस, इन्फ्लूयेंजा, मेनिनजाइटिस, दस्तरोग, खसरा आदि संक्रामक बीमारियों के प्रसार को सुविध

ाजनक बनाती हैं और घरेलू हिंसा, मनोवैज्ञानिक समस्याओं तथा दुर्घटनाओं से भी जुड़ी हैं।

इसके अतिरिक्त 80 के दशक में जीवनशैली बीमारियों जैसे मधुमेह, कैंसर और हृदय रोगो के कारण मौतें बढ़ी हैं।

एचआईवी/एड्स- 1983 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति की घोषणा के बाद एक दूसरी अत्यधिक हानिकारक संक्रामक बीमारी उभरी है, एचआईवी/एड्स नामक इस बीमारी का सार्वजनिक स्वास्थ्य परिदृश्य पर काफी प्रभाव पड़ा है। देश में 1986 में चेन्नै में पहला एचआईवी मामला मिलने के एक दशक बाद लगभग 5.20 मिलियन जनसंख्या संक्रमित थी। इन संक्रमित लोगों में लगभग 40 प्रतिशत महिलायें थीं।

संक्रमण में खतरनाक वृद्धि के बावजूद भारत में अधिकांश महिलाओं को एचआईवी/एड्स की जानकारी बहुत कम है। या तो महिलायें अपने पति/साथी से लैंगिक संपर्क द्वारा बीमारी लगने की संभावना से अनजान हैं या सावधानियों का पालन करने में अक्षम हैं।

वैवाहिक संबंधों में अधिकांश महिलायें या तो 'नहीं' करने की स्थिति में नहीं हैं या उनको कंडोम प्रयोग करने को कहने की क्षमता नहीं है। केरल (अक्सर स्वास्थ्य संकेतकों के अर्थ में बेहतर राज्य के दर्जे वाले स्तर) जैसे राज्य में परिवार नियोजन व्यवहारो से पता चलता है कि विवाहित युगल आमतौर से परिवार नियोजन साधनो का तब तक प्रयोग नहीं करते जब तक उनको इच्छित दो बच्चे नहीं हो जाते हैं। इस बिन्दु पर महिलायें बंध्याकरण करवा लेती हैं।

विषमलिंगी संक्रमण के बढ़ते रुझान के संदर्भ में अक्सर महिलाओं के लैंगिक अधिकारों का उल्लंघन परिवार और उसके बाहर होता है, जो एक परेशान करने वाली बात है। दुनिया भर में हालिया आंकड़ों से महिलाओं में एचआईवी संक्रमण का बढ़ता दायरा सामने आया है जो एचआईवी फैलाव को असमान लैंगिक संबंधों से जोड़ता है। महामारी के इस 'महिलाकरण' पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। इसके साथ यह समझ भी जुड़ी है कि वास्तव में

महिलायें समाजीकरण के कारण अपनी स्वास्थ्य समस्याओं को छिपाती हैं और समय पर इलाज नहीं कराती हैं। यह महिलाओं को उस दायरे से बाहर रखता है जहां इलाज कराने से फर्क पड़ सकता है। एचआईवी/एड्स के मामले में समय पर हस्तक्षेप न करने से यह घातक सिद्ध हो सकता है।

निश्चित रूप से एचआईवी/एड्स के बारे में बढ़ती चिन्ताओं ने लैंगिकता, वयस्क एवं किशोर लैंगिक व्यवहारों और चिकित्सकीय नैतिकता के पेचीदा मुद्दों पर अधिक जागरूकता फैलाने की ओर ध्यान खींचा है। इसके साथ ही, एचआईवी/एड्स के फैलाव से महिलाओं की स्वास्थ्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य ढांचे पर दबाव बढ़ाया है।

काम संबंधी स्वास्थ्य परिणाम

संभवतः महिलाओं में सर्वाधिक व्यावसायिक जोखिम अधिक काम का है। महिलाओं पर घर के प्रबंधन का भारी बोझ है। चाहे भले ही वे बाहर काम करती हों पर इससे घरेलू काम का बोझ उनके ऊपर कम नहीं होता है।

पीने तथा पूरे परिवार की अन्य जरूरतों के लिए भारी मात्रा में पानी एकत्र करने की जिम्मेदारी महिलाओ के लिए लगातार पीठ में दर्द, रीढ़ की समस्याओं, थके पैरों और आम तकलीफों का कारण बनती है। पानी लाने के कारण महिलाओं के स्वास्थ्य को स्थाई नुकसान को दर्ज किया गया है जिनमें रीढ़ और कमर की विकृति तथा कमजोर करने वाला गठिया शामिल हैं। त्वरित समस्याओं में जल से फैलने वाले रोग, दीर्घकालीन थकावट और गर्भवती महिलाओं में गर्भपात का भय हो सकती हैं। इसके साथ-साथ पानी एकत्र करना, खासकर कमी वाली स्थितियों में, महिलाओं पर काम का अत्यधिक बोझ डालता है जो उनके असाधारण मानसिक तनाव का कारण बन सकता है। ऐसी स्थितियों में पानी एकत्र करना झगड़ों और

कभी-कभी लड़ाइयों का कारण भी बन सकता है। उदाहरण के लिए, मुंबई की मलिन बस्तियों में रहने वाली औरतों ने पानी को स्थानीय दंगों का एक कारण बताया है।

कार्यस्थल पर महिलाओं के स्वास्थ्य को रसायनों, शोर, भारी वजन उठाने, शारीरिक जोखिमों, मशीनी जोखिमों और अनेक सामाजिक जोखिमों का शिकार होना पड़ सकता है। कार्यस्थल पर हिंसा, लैंगिक उत्पीड़न और उत्पीड़न की समस्यायें भी हो सकती हैं। असंगठित क्षेत्र में कुछ सामान्य स्वास्थ्य समस्याओं का संबंध शरीर की स्थिति या मुद्रा से हो सकता है। अधिकांशतः काम में लगातार झुके रहना और लंबे समय तक बार-बार आगे झुकना शामिल है जिससे जोड़ों और शरीर में दर्द सामान्य बात है।

कुछ उत्पादन इकाइयों में महिलाओं को खतरनाक सामग्रियों के साथ काम करना और रसायनों की भाप या धुंयें में सांस लेना पड़ सकता है। खनन और रेडियोसक्रिय सामग्री से संपर्क तथा अधिकारियों द्वारा समुचित सुरक्षा उपलब्ध न कराये जाने के कारण महिलाओं को बार-बार गर्भपात, प्रसव गड़बड़ियों, त्वचा संक्रमण, मासिक धर्म विकृतियों, थैलसीमिया और कैंसर का शिकार होना पड़ सकता है। अक्सर महिलायें अपनी आजीविका के लिए ऐसे रोजगार पर निर्भर रहती हैं, इसलिये वे ऐसे नुकसान से बच नहीं सकतीं न सुरक्षा मानकों को लागू न

कराने वालों पर जवाबदेही डाल सकती हैं।

महिलाओं को काम देने वाली अनेक फैक्ट्रियों या इकाइयों में काफी प्रकाश या शौचालयों की व्यवस्था नहीं होती है। ऐसी स्थितियों में काम करने वाली महिलाओं को मूत्र तंत्र संक्रमण होने की संभावना अधिक होती है। अक्सर ऐसी इकाइयों में महिलायें लंबे समय तक यथासंभव कम से कम खाना और पानी प्रयोग कर काम करती हैं ताकि उनको शौचालय का प्रयोग करने की जरूरत न हो।

धान की खेती करने वाले तटीय महाराष्ट्र क्षेत्र में किये एक अध्ययन से पता चलता है कि सभी शिशु मौतों का 40 प्रतिशत जुलाई से अक्तूबर महीनों में होता है और भारी संख्या में समय-पूर्व प्रसव या मृत शिशु प्रसव भी। नतीजा यह निकला कि धान रोपाई के महीनों में लंबे समय तक उकडूं रह कर काम करना इसका प्रमुख कारण है।

दलित महिलाओं तथा शहरी मलिन बस्तियों में रहने वाली महिलाओं के एक हिस्से को कूड़ाघरों में कबाड़ बीनने और मानव मल साफ करने पर मजबूर होना पड़ता है। उनको अनेक वाइरस संक्रमण तथा फोड़े-फुंसी होने की संभावना होती है जो बार-बार संक्रमण तथा अस्वच्छ स्थितियों के कारण जल्दी ठीक नहीं होते हैं। कीटनाशकों से संपर्क के संभावित स्वास्थ्य प्रभावों में विषाक्तता, कैंसर, त्वचा रोग, गर्भपात, समय-पूर्व प्रसव और विकृत शिशु शामिल हैं।

कृषि में काम करने वाली महिलाओं को; फलों, सब्जियों और फूलों जैसी नकदी फसलों के उत्पादन में जहरीले रसायनों से संपर्क हो सकता है। चार्ट में महिलाओं के पेशे और उनसे संबंधित स्वास्थ्य प्रभावों का वर्णन किया गया है-

कृषि में काम करने वाली महिलाओं को फलों, सब्जियों और फूलों जैसी नकदी फसलों के उत्पादन में जहरीले रसायनों से संभावित संपर्क

पेशे	स्वास्थ्य समस्यायें
खेतिहर मजदूर, स्थिति की समस्याएं धूल और रसायनों से संपर्क, असुरक्षित औजारों या नंगे पैर	सामान्य शरीर दर्द, टखनों, कमर, पीठ, पैरों और कंधों में दर्द, नाक से पानी आना, खांसी, श्वसन तंत्र की उत्तेजना, श्वसन एलर्जी श्वसन तंत्र संक्रमण, सीने में खालीपन का अहसास, न्यूमोनोकोनियोसिस, त्वचा एलर्जी, त्वचा में जलन, धब्बे और प्रूराइटिस, आंखो में जलन, पैडी केरेटाइटिस, पैरोनीसिया, पैरों में फफूंद संक्रमण, एक्जिमा, उंगलियों में आस्टियोमैलाइटिस। दुर्घटना संबंधी समस्यायें - कीटनाशक संबंधी विषाक्तता, पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र और तंत्रिका तंत्र की गड़बड़ियां, मिचली, उल्टी, पेट में ऐंठन, दस्त, खांसी, सिरदर्द, चक्कर, धुंधलापन, मांसपेशियों में ऐंठन, बेहोशी, प्रतिवर्तों में कमी, संतुलन में गड़बड़ी, पीलिया, गहरी बेहोशी और आखिर में सांस न ले पाने के कारण मौत। स्त्रीरोग-गर्भपात, प्रसव-पूर्व शिशु मृत्यु, मृत शिशु जन्म, नवजात, शिशु और मातृत्व मृत्यु की अधिक दर।
खान कर्मी-उच्च तापमान से संपर्क आंख की सुरक्षा में कमी	अत्यधिक गर्मी से आघात, आंख की गंभीर समस्यायें जैसे आंख में अयस्क का टुकड़ा पड़ जाना।
निर्माण कर्मी-काम का भारी बोझ, शोर का असुरक्षित स्तर, धूल और रसायनों से संपर्क, दुर्घटना की संभावना वाली कार्य स्थितियां, ठेके पर काम	शारीरिक तनाव और दबाव, हड्डियों की गड़बड़ी, हाथों और पैरों में सुन्नता, बहरापन, तनाव, उच्च रक्तचाप, मांसपेशियों में दर्द, पेट की गड़बड़ियों, गैस्ट्रोइंटराइटिस। श्वसन समस्यायें, दमा, सिलिकोसिस, ऐस्बेस्टोसिस, त्वचा रोग, गर्मी में ऐंठन, सनबर्न, गंभीर दुर्घटना, चोट, मौतें, तुरंतु गर्भपात, शिशु मृत्यु दर अधिक, अलगाव और बेगानेपन का अहसास।
रेडीमेड कपड़े निर्माता कर्मी - स्थिति की समस्यायें, काम का भारी बोझ।	स्थिति की समस्यायें-पीठ, खासकर निचली पीठ में दर्द, आंखों की समस्यायें, एनीमिया, ल्यूकोरिया, मूत्र तंत्र संक्रमण।
घरेलू काम/कुटीर उद्योग-धूल, भाप और धुयें से संपर्क, घरेलू उत्पादों के रसायन, दुर्घटनाओं की संभावनायें, स्थिति की समस्यायें, मानसिक तनाव	खांसी और बलगम, ब्रांइकाटिस, इम्फीसीमा, आंख, नाक और गले में जलन, त्वचा पर घाव, त्वचा एलर्जी, आंखों की बीमारियां, शरीर में दर्द, थकावट, एनीमिया, ट्यूमर का बढ़ना, कार्बन मोनोआक्साइड विषाक्तता, भ्रूण का बाधित विकास, गंभीर अवसाद, खराब आत्मछवि।

मानसिक स्वास्थ्य

महिलाओं की मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं पर बिरले ही बात होती है। सभी पुरुषों में 11 प्रतिशत के मुकाबले सभी महिलाओं में 15 प्रतिशत मानसिक बीमारियों से पीड़ित हैं। 1960 के दशकांत और 1990 में कराये शहरी/ग्रामीण तथा उत्तर/दक्षिण भारतीय समुदायों के मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षणो से पता चलता है कि लगभग 1.3 प्रतिशत महिलाओं को गंभीर मानसिक विकृतियां (एसएमडी) और 10-11 प्रतिशत महिलाओं को सामान्य मानसिक विकृतियां (सीएमडी) हैं। स्त्रीरोग रुग्णता और सीएमडी के बीच मजबूत संबंध हैं। लगभग 12-15 प्रतिशत महिलाओं को मासिक धर्म से पहले बेचैनी की शिकायत है। काफी महिलाओं में रजोनिवृत्ति के बाद (पोस्टपार्टम) अवसाद सामान्य बात है जिसमें इलाज की जरूरत है।

महिलाओं की रोजमर्रा की जिन्दगी से उनके मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। घर के बाहर और भीतर काम का बोझ तथा अनेक भूमिकायें उनके ऊपर अत्यधिक दबाव और बेचैनी का कारण बनती हैं। गरीबी, भेदभाव और हिंसा बढ़ने पर मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

बढ़ती बेरोजगारी, गरीबी, संसाधनों और स्वास्थ्यरक्षा तक पहुंच न होने तथा काम के बोझ, हिंसा और जीने के संघर्ष को बढ़ावा देकर वैश्वीकरण ने मानसिक स्वास्थ्य पर बहुत नकारात्मक प्रभाव डाला है। महिलाओं में आत्महत्या के प्रयास अधिक होते हैं। ये सब उसके ऊपर पड़ने वाले विभिन्न दबावों का संकेत हैं।

पर, सरकारी अस्पतालों में मानसिक स्वास्थ्य चिकित्सा के लिए ढांचागत व्यवस्थायें कमजोर हैं। सरकारी अस्पतालों में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं को बिस्तरों का आबंटन बहुत

कम है। ऐसे मनोचिकित्सकों की भी कमी है जो मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के मुख्य कारणों के तौर पर महिलाओं के यथार्थ और उनकी सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक सीमाओं को समझ सकें तथा उनको संवेदनशीलता से हल कर सकें। यह अनुपस्थिति महिलाओं की पहुंच और इलाज कराने की उनकी इच्छा को सीमित करती है। जहां मानसिक संरक्षणगृहों, मानसिक स्वास्थ्य बिस्तरों और जेंडर संवेदनशील मनोचिकित्सकों की कम संख्या समस्या बनी हुई है वहीं उनको सशक्त करने के लिए बनाये गये मानसिक स्वास्थ्य कानून (1987) का अक्सर महिलाओं के खिलाफ दुरुपयोग होता है।

हिंसा, प्राकृतिक आपदाओं, विनाशकारी दुर्घटनाओं, विस्थापन और पुनर्वास के मानसिक स्वास्थ्य आयामों का अध्ययन अनुपयुक्त है तथा इसमें जेंडर नजरिया शामिल नहीं है। पर, धीरे-धीरे इन अंतर्सबंधों की पहचान हो रही है और टाटा इंस्टीट्यूट आफ शोसल साइंसेज, मुंबई एवं नेशनल इंस्टीट्यूट आफ मेंटल हेल्थ एंड न्यूरोलोजिकल साइंसेज, बंगलौर जैसे संस्थान उत्पीड़ितों की मानसिकता पर आघात को समझने के लिए अध्ययन कर रहे हैं।

हिंसा के स्वास्थ्य पर परिणाम

महिलाओं द्वारा झेली गई हिंसा के इन विभिन्न प्रकारों का उनके खराब स्वास्थ्य में काफी हिस्सा है। यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं जैसे घाव, हड्डी टूटने, दीर्घकालीन दर्द, स्त्रीतंत्र गड़बड़ियां, अनैच्छिक गर्भ, एसटीआई, इरीटेबल बाउल सिंड्रोम, दमा, अवसाद एवं आघात, स्वयं को नुकसान पहुंचाने वाला व्यवहार, खराब आत्म-छवि, लैंगिक गड़बड़ी, आघात-पश्चात तनाव; आदि से लेकर आत्महत्या, हत्या, स्थाई विकलांगता जैसे घातक नतीजों तक जा सकता है। ये सभी महिला जनसंख्या के एक बड़े हिस्से की गहन पीड़ा और खराब स्वास्थ्य के जिम्मेदार हैं। अक्सर घरेलू हिंसा भारत में प्रजनन आयु वाली महिलाओं में काफी सीमा तक विकलांगता और मौत की जिम्मेदार होती है।

महाराष्ट्र में 1993-95 में किये समुदाय तथा अस्पताल आधारित एक दृष्टिकोण अध्ययन के अनुसार गर्भावस्था में लगभग 16 प्रतिशत मौतें घरेलू हिंसा के कारण हुई थीं।

मुंबई में हुये एक और अध्ययन में एक सार्वजनिक अस्पताल के आपात विभाग के पुलिस रजिस्टर से पता चला था कि आपात विभाग में लाई गई 23 प्रतिशत महिलाओं का कारण घरेलू हिंसा थी। हिंसा द्वारा महिलाओं के उत्पीड़न के निश्चित संबंध मानसिक स्वास्थ्य से हैं। उसकी बहुत सी आश्रित या गौण पहचानें और उत्पीड़न उसे मनोवैज्ञानिक तनाव का शिकार बना देता है।

प्रदूषण और पर्यावरण क्षरण के स्वास्थ्य पर परिणाम

सांस के माध्यम से लगातार धूल कणों को ग्रहण करने वाली महिलायें और बच्चे लगातार अनेक श्वसन तथा त्वचा रोगों के शिकार हो जाते हैं और अनेक संवेदी अंगों के ठीक से काम न करने का अनुभव करते हैं जिसके उनके प्रजनन स्वास्थ्य पर दीर्घकालीन प्रभाव पड़ते हैं। गर्भावस्था के दौरान महिलाओं पर शोर और प्रदूषण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। कोयला खदानों की धूल से लोगों को होने वाली सामान्य बीमारियां ट्यूबरकुलोसिस, खांसी-जुकाम, मलेरिया, त्वचा रोग, दस्तरोग, दांतों का बदरंग होना, जोड़ों में दर्द होना, गठिया, सुस्ती, आदि हैं।

इसके साथ ही रसायनों और अयस्कों से निकलने वाला विकिरण महिलाओ के स्वास्थ्य पर सीधे असर डालता है। उदाहरण के लिए जादूगौड़ा (झारखंड) यूरेनियम खानों के नजदीक रहने वाली महिलाओं पर अत्यन्त गंभीर प्रभाव पड़ते हैं, जहां विकिरण स्तर वैज्ञानिक रूप से सिद्ध स्वीकार्य प्रदूषण स्तर से अधिक हैं और जहां महिलाओं की प्रजनन एवं स्वास्थ्य समस्याओं का यूरेनियम विकिरण से सीधा संबंध है। इसके कारण बड़ी संख्या में गर्भपात, शारीरिक एवं मानसिक विकृति वाले बच्चों का जन्म तथा ल्यूकेमिया एवं थैलेसीमिया के कारण मरणान्तक बीमारियां और मौतें होती हैं।

खनन क्षेत्रों के आसपास रहने वाले समुदाय, नदियों, झरनों, कुओं और ट्यूबवेलों जैसे स्रोतों से प्रदूषित पेयजल पीने को मजबूर हैं क्योंकि खनन कंपनियां बिना ठीक से शोधित या अशोधित रसायन कचरे और मलबे को छोड़ देते हैं जो भूगर्भीय जल और मिट्टी में मिल जाता है। परिवार में निभाई जाने वाली भूमिकाओं के कारण महिलायें खासकर जल प्रदूषण का ज्यादा शिकार होती हैं। इनमें पानी एकत्र करने, कपड़े धोने, बर्तन मांजने और बच्चों को नहलाने जैसे घरेलू कामों के लिए जल स्रोतों के साथ संपर्क शामिल हैं।

उदाहरण के लिए उड़ीसा की क्रोमाइट खानों ने नदियों के प्रदूषण द्वारा गंभीर स्वास्थ्य समस्यायें पैदा की हैं जिनमें श्वसन तंत्र की उत्तेजना, नाक के पर्दे पर फोड़े, खुजली वाली डर्मेटाइटिस, राइनाइटिस, ब्रांकोस्पैस्म और न्यूमोनिया शामिल हैं। एक अध्ययन ने उद्घाटित किया है कि क्रोमियम खाद्य श्रंखला में प्रवेश कर गया है और उसने पेड़-पौधों खासकर आम और धान तथा मांस और मछली को अखाद्य बना दिया है। आंध्र प्रदेश में अभ्रक खानों के पास वाले क्षेत्रों में जल प्रदूषण ने गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं जैसे मिचली, उल्टी, दस्तरोग, इयोसिनोफिलिया, सिलिकोसिस और ट्यूबरकुलोसिस को पैदा किया है।

हालांकि भोपाल गैस कांड के कुछ स्वास्थ्य प्रभाव महिलाओं और पुरुषों पर समान थे, महिलायें अपने लिये विशिष्ट स्वास्थ्य समस्याओं से भी परेशान हुईं। गैस महिलाओं की पीढ़ियों को प्रभावित करती रहेगी। जो महिलायें विभीषिका के समय गर्भवती थीं, 43 प्रतिशत को फौरन गर्भपात हो गया।

आगे आने वाले सालों में फौरन गर्भपात की दर भारत के राष्ट्रीय औसत से 4 से 10 गुना अधिक बनी रही। गैस के संपर्क में आई केवल 50 प्रतिशत लड़कियों में ही मासिक धर्म सामान्य है। अब यह प्रकाश में आया है कि यहां तक कि जो लड़कियां शिशु या मां के गर्भ में थीं उनका मासिक भी गड़बड़ है।

मेडिको फ्रेंड सर्किल के एक अध्ययन में पाया गया है कि गैस कांड के समय जो महिलायें गर्भवती थीं वे फौरन गर्भपात, मृत शिशु जन्म, गर्भ के हिलने-डुलने में कमी और मासिक धर्म विकृतियों का शिकार हुई।

भाग 4

स्वास्थ्य नीतियां एवं महिला स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रम

स्वास्थ्य नीतियों का एक महत्वपूर्ण आयाम यह है कि इन कार्यक्रमों की योजनायें औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान पैदा हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1938 में राष्ट्रीय योजना आयोग की स्थापना की जिसमें राष्ट्रीय स्वास्थ्य पर एक उपसमिति (सोखे समिति) भी थी। इस समिति ने देश की स्वास्थ्य स्थितियों और स्वास्थ्य सेवाओं का गहन मूल्यांकन किया और सुधार के सुझाव दिये (एनपीसी 1948)। इसी के साथ ब्रिटिश अधिकारियो ने एक स्वास्थ्य सर्वेक्षण और विकास समिति का गठन किया जिसे आमतौर से भोर समिति (1943) के नाम से जाना जाता है और इसे भी राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन से बहुत प्रेरणा मिली थी।

भोर समिति के कुछ निर्देशक सिद्धान्त थे-

1. भुगतान न कर सकने की अक्षमता के कारण किसी व्यक्ति को उपयुक्त चिकित्सा देखभाल से वंचित नहीं किया जाना चाहिये।

2. जब पूर्ण विकसित हो जांय तब स्वास्थ्य सेवाओं को, सही निदान और इलाज के लिए आवश्यक सारी सलाहकार प्रयोगशाला और संस्थागत सुविधाये उपलब्ध करानी चाहिये।

3. शुरुआत से ही स्वास्थ्य कार्यक्रमों को रोग निवारक कामों पर विशेष जोर देना चाहिये।

4. देश के विशाल ग्रामीण क्षेत्रों को यथासंभव जल्दी से जल्दी चिकित्सा सहायता और रोग निवारक स्वास्थ्यरक्षा उपलब्ध करानी चाहिये।

5. सेवित समुदायों को अधिकाधिक लाभ सुनिश्चित कराने के लिए स्वास्थ्य सेवाओं को यथासंभव जनता के जितना निकट संभव हो उतना निकट होना चाहिये।

जनता के स्वास्थ्य की रक्षा और उसका संवर्द्धन सुनिश्चित करने के इन सिद्धान्तों को

भारत के संविधान में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों द्वारा स्थापित किया गया। इसके बाद भारत की सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था में कुछ दूरगामी विकास हुये जैसे ऊर्ध्वाधर कार्यक्रम, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, चिकित्सा शिक्षा का सामाजिक दृष्टिकोण, परिवार नियोजन/कल्याण कार्यक्रम, जल वितरण एवं सफाई, पोषण, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, बहूद्देशीय कर्मचारी कार्यक्रम, सामुदायिक स्वास्थ्य स्वयंसेवक (गाइड) कार्यक्रम, और राष्ट्रीय नीति कथन।

पर, यह राजनीतिक इच्छा शक्ति थोड़े समय के लिए थी और 70वें दशक के बाद अगले तीन दशकों में देश में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता में तेजी से गिरावट आई। इस गिरावट के पीछे मुख्य ताकतें थीं-

- गरीबों की स्वास्थ्य आवश्यकताओं वाली अन्य स्वास्थ्य सेवाओं की गंभीर अनदेखी की कीमत पर परिवार नियोजन कार्यक्रम के प्रति सनकी लगन। (पहली योजना में 6.5 मिलियन से संसाधन आबंटन 10000 गुना बढ़ा कर आठवीं योजना में 65000 मिलियन किया जाना)
- विकास सहायता एजेंसियों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के गठजोड़ से तथाकथित 'स्वास्थ्य पर अंतर्राष्ट्रीय पहलों' को थोपा जाना।
- ढांचागत समायोजन कार्यक्रम के नाम पर विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (आईएमएफ) जैसी संस्थाओं को देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों को बदलने में शामिल करना; तथा 80वें दशक के बाद निजीकरण के लिए दबाव।

अलमाअता घोषणा (1978) के बाद सार्वजनिक स्वास्थ्य नीतियों के क्षेत्र में बदलाव तब सामने आया जब वैश्विक शक्तियों ने सत्ता का साझा और संसाधनों का वितरण करने के सिद्धान्त का विरोध किया और 'चयनित प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा' का विचार गढ़ा। इससे ऊर्ध्वाधर कार्यक्रमों का जन्म हुआ जिन्होंने समग्र स्वास्थ्य सेवाओं के प्राविधान को हल्का कर दिया। समग्र प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा (पीएचसी) इलाज के बजाय रोग निवारण पर ज्यादा जोर देता है। यह घरेलू स्वयं-सहायता, सामुदायिक सहभागिता और लोगों को स्वीकार्य, उपयुक्त और वहन करने योग्य तकनीक पर विश्वास करता है। यह आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान और संभावित स्वास्थ्य प्रौद्योगिकी को स्वीकार्य प्रभावी परंपरागत स्वास्थ्यरक्षा व्यवहारों से जोड़ता है। महिलाओं के लिए विशेष महत्व की बात यह है कि पीएचसी की प्रभावशीलता प्राथमिक स्वास्थ्यरक्षा कर्मियों, जो अधिकांशतः महिलायें हैं, की सामुदायिक स्वीकार्यता पर बहुत अधिक निर्भर करती है।

दूसरी ओर, ऊर्ध्वाधर कार्यक्रम न केवल तकनीकी और जनता पर ऊपर से थोपे गये बल्कि इन्होंने दुनिया के दक्षिणी भाग को उत्तरी भाग पर पैसों, वैक्सीन सप्लाई तथा अन्य समर्थन के लिए आश्रित बना दिया। अतः आर्थिक, प्रशासनिक और रोगवैज्ञानिक वहनीयता के विचार से कमजोर होने के बावजूद इन कार्यक्रमों को, देश की जनता के लिए इन कार्यक्रमों की आवश्यकता के बजाय राजनीतिक कारणों से थोपा जाता रहा। इस प्रकार पिछले 15 वर्षो से भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता में गंभीर गिरावट देखी जा रही है। आज दुनिया में हमारे देश का सार्वजनिक स्वास्थ्य पर खर्च सबसे नीचे के पांच स्थानों में है। जैसा राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति ने स्वीकार किया है, यह सकल घरेलू उत्पाद का 0.9 प्रतिशत है।

पिछले कई दशकों से राष्ट्रीय और व्यक्तिगत, दोनों स्तरों पर भारतीय महिलाओं का खराब स्वास्थ्य चिन्ता का विषय है, पर यह सवाल अभी बाकी है कि क्या कभी महिला स्वास्थ्य को गंभीरता से लिया गया है? 1960 के दशकांत से महिलायें परिवार नियोजन कार्यक्रम का केन्द्रीय लक्ष्य रही हैं पर उनकी प्रजनन स्वास्थ्य आवश्यकताओं को बच्चों के जीवन के आगे कभी स्वीकार नहीं किया गया है न उनके स्वास्थ्य मुद्दों को समन्वित/समग्र दृष्टिकोण से देखने की कभी चिन्ता की गई है। आज भारत में महिला स्वास्थ्य- 'नीतियों की गूंज और शोध में चुप्पी, गलत निर्देशित और आधे-अधूरे दृष्टिकोणों और महत्वपूर्ण मुद्दों जैसे रुग्णता या स्वास्थ्य में परंपरागत जेंडर विरोधाभासों को उलटने पर ठीक से ध्यान न देने' से भरा पड़ा है। अनेक प्रकार से यह भारत में वैश्विक स्तर पर स्वास्थ्य में जेंडर समानता पर ध्यान न देने को प्रतिबिम्बित करता है।

हालांकि भारत में लगभग 80 प्रतिशत स्वास्थ्यरक्षा निजी क्षेत्र द्वारा उपलब्ध कराई जाती है पर सरकार प्राथमिक स्वास्थ्यरक्षा और टीकाकरण तथा परिवार नियोजन जैसी रोग निवारक सेवाओं को देने का प्रमुख स्रोत है।

1990 के बाद नीतियों में अनेक परिवर्तन हुये हैं जिन्होंने महिलाओं पर प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव डाला है। इनमें शामिल हैं-

1. आर्थिक सुधार एजेंडा जो उदारीकरण, विभिन्न उद्योगो में सब्सिडी घटाने और बाजार-उन्मुख विकास के माध्यम से वित्तीय घाटे को कम करता है।

2. राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की पैराडाइम में बदलाव जो व्यक्तियों और युगलों की प्रजनन तथा लैंगिक स्वास्थ्य आवश्यकताओं को पूरा करने की आईसीपीडी भावना को अभिव्यक्त करता है।

3. एचआईवी/एड्स और इसके बढ़ते 'महिलाकरण' पर गंभीर चिन्ता क्योंकि यह अब उच्च जोखिम वाले समूहों से आम जनसंख्या की ओर बढ़ रहा है।

4. पीकिंग के चौथे विश्व महिला सम्मेलन (1995) और मानवाधिकारों पर वियेना सम्मेलन (1993) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के आधार पर निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में स्वास्थ्य मुद्दों और मानवाधिकार उल्लंघनों के तौर पर हिंसा के विभिन्न रूपों को स्वीकार करना।

सरकार द्वारा स्वास्थ्य पर किया जाने वाला कुल खर्च सकल घरेलू उत्पाद का केवल 1.3 प्रतिशत है। सभी लोगों को उपलब्ध कराई जाने वाली सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं के साथ, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवायें महिलाओं की विशिष्ट स्वास्थ्य और पोषण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा चलाई जाने वाली परिवार कल्याण कार्यक्रम तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय और नवगठित महिला एवं बाल विकास मंत्रालय (जो 2005 के पहले मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत केवल एक विभाग था) द्वारा चलाई जाने वाली समग्र बाल विकास सेवायें (आईसीडीएस) के माध्यम से काम करता है।

पहले परिवार नियोजन कार्यक्रम के बाद से ही महिलाओं की स्वास्थ्य आवश्यकताओं के लिए अनेक नीतियां और कार्यक्रम हस्तक्षेप किये गये हैं। पर, इन सभी की आलोचना स्वास्थ्य पर एक संकुचित दृष्टिकोण और महिला स्वास्थ्य आवश्यकताओं को विशिष्ट प्रजनन स्वास्थ्य तक सीमित करने के कारण की गई है। स्वास्थ्य नीतियों का विकास 1952 के परिवार नियोजन कार्यक्रम से आगे बढ़ा है। 'क्लीनिकल नजरिये' और महिला केन्द्रित वंध्याकरण दृष्टिकोण से विस्तार कर 1992 में इसमें मातृत्व एवं बाल स्वास्थ्य (एमसीएच) तथा बाल उत्तरजीविता एवं सुरक्षित मातृत्व को जोड़ा गया जिनका लक्ष्य रुग्णता तथा मृत्यु के मुख्य कारणों को दूर

करते हुये महिलाओं और बच्चों का संपूर्ण स्वास्थ्य स्तर सुधारने और मातृत्व मृत्यु दर (एमएमआर), शिशु मृत्यु दर (आईएमआर) एवं बाल मृत्यु दर (सीएमआर) घटाना था। 1994 में आईपीसीडी के बाद महिला अधिकारों और प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल के प्रति देश की प्रतिबद्धता 1997 में प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम (आरसीएच) बनाने के माध्यम से अभिव्यक्त हुई।

इसी के साथ-साथ अनेक योजनाओं और कार्यक्रमों जैसे 1975 में समग्र बाल विकास कार्यक्रम (आईसीडीएस), 1970 में नेशनल न्यूट्रीशनल एनीमिया प्रोफेलैक्सिस प्रोग्राम (एनएनएपीपी), 1993 में राष्ट्रीय पोषण नीति (एनएनपी) तथा ऊर्ध्वाधर कार्यक्रमों जैसे राष्ट्रीय सार्वजनिक टीकाकरण कार्यक्रम, राष्ट्रीय क्षय नियंत्रण कार्यक्रम और राष्ट्रीय कुष्ठ उन्मूलन कार्यक्रम महिलाओं और बच्चों की स्वास्थ्य एवं पोषण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शुरू किये गये।

नीतिगत पक्ष में, एक राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम (एनएमएचपी) भी 1982 में शुरू किया गया। इस दस्तावेज ने चिकित्सा के आधार को परंपरागत (मनोवैज्ञानिक) सेवाओं से सामुदायिक देखभाल की ओर बदलता है। पर, वास्तव में एनएचएमपी राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति का एक छोटा सा फुटनोट है और यह सामुदायिक पहल को कोई समर्थन (वित्तीय या तकनीकी) नहीं देता है। व्यवहार में मानसिक स्वास्थ्य समस्यायें हल करने का माडल अभी भी अधिकतर जैव-चिकित्सकीय माडल तथा दवायें देने पर निर्भर है। 1996-97 में आंध्र प्रदेश, आसाम, राजस्थान और तमिलनाडु के एक-एक जिले में जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम (डीएमएचपी) शुरू किया गया और बाद में प्रत्येक जिले में 22.5 लाख ग्रांट सहायता से इसे देश के 20 राज्यों के 200 जिलों में विस्तार दिया गया।

नीतियां और कार्यक्रम

महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याओं से संबंधित कुछ नीतियां और कार्यक्रम हैं-

प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य (1997)

महिलाओं और बच्चों को समग्र स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सेवायें देने वाले इस राष्ट्रीय कार्यक्रम को 1997 में शुरू किया गया। कार्यक्रम का लक्ष्य प्रजनन आयुवर्ग वाली महिलाओं और बच्चों को मिलने वाली सेवाओं की गुणवत्ता, वितरण और उपलब्धता सुधार कर उनको प्रभावी बनाना है।

कार्यक्रम का दूसरा चरण आरसीएच-2 का लक्ष्य, दूसरे विभागों जैसे आईसीडीएस, पानी और सफाई आदि के साथ कनवर्जेन्स के माध्यम से जनसंख्या की पहुंच की समस्या दूर करने के लिए सबसेंटरों, पीएचसी और सीएचसी की स्थिति के पुनः निर्धारण का प्रयास करना है। इसका लक्ष्य प्रसूति देखभाल, एमटीपी और आईयूडी लगाने की सुविधा उपलब्ध करा कर पीएचसी की आरसीएच सुविधाओं को उच्चीकृत करना भी है। जहां एनस्थीसिस्ट उपलब्ध न

आरसीएच में शामिल हैं- अनैच्छिक गर्भावस्था का प्रबंधन, सुरक्षित मातृत्व एवं शिशु उत्तरजीविता प्रोत्साहित करने की सेवायें, जोखिम वाले समूहों के लिए पोषण सेवायें, प्रजनन तंत्र संक्रमण (आरटीआई) एवं लैंगिक प्रसारित संक्रमण (एसटीआई) की रोकथाम और इलाज, किशोरियों के लिए प्रजनन स्वास्थ्य सेवायें; स्वास्थ्य, लैंगिकता और जेंडर पर सूचनायें; शिक्षण, सलाह एवं प्रभावी संदर्भ सेवाओं की स्थापना।

हो वहां निजी एनस्थीसिस्ट की सेवायें लेना तथा गरीब लोगों को संदर्भ परिवहन की सुविधायें उपलब्ध कराना कार्यक्रम के कुछ तत्व हैं। पर, समग्र आपातकालीन प्रसूति देखभाल और नवजात देखभाल केवल सबसेंटर स्तर की प्रथम संदर्भ इकाई पर ही उपलब्ध है।

इस प्रकार सेवाओं के समग्र पैकेज की प्रतिबद्धता के बावजूद कार्यक्रम का केन्द्र प्रसव-पूर्व देखभाल पर जारी है जबकि आपतकालीन प्रसूति देखभाल और प्रसव देखभाल पूरी तरह तिरस्कृत तथा बहुसंख्य ग्रामीण महिलाओं को सुलभ नहीं है।

अभी भी उच्च एमएमआर नीतिगत स्तर पर ग्रामीण भारत की ग्रामीण महिलाओं को जीवनरक्षक आपतकालीन प्रसूति देखभाल में आने वाली बाधाओं के कारण है। वे सुदूर क्षेत्रों में भी मूलभूत एमबीबीएस डाक्टरों को प्रसूति संबंधी शल्यक्रियायें करने से रोकते हैं जहां कोई प्रसूतिविशेषज्ञ उपलब्ध नहीं हैं। आक्सिलरी नर्स मिडवाइफ (एएनएम) जैसे पैरामेडिकल कर्मियों को भी ग्रामीण क्षेत्रों में आपताकालीन प्रसूति प्रबंधन की अनुमति नहीं है। नीति नर्सों या मूलभूत

डाक्टरों को भी एनस्थीसिया देने की अनुमति नहीं देती है। चूंकि ग्रामीण क्षेत्रों में एनस्थीसिस्ट की संख्या सीमित है, यह जीवनरक्षक आपात चिकित्सा तक पहुंच को और सीमित कर देता है। रक्त बैंक के नये नियम बहुत काल्पनिक हैं जिसके कारण रक्त बैंक लाइसेंस लेने के लिए बहुत सी अनावश्यक चीजों की जरूरत पड़ती है। इसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों में पहले से ही खून चढ़ाने की सुविधायें और सीमित होती हैं।

जहां आरसीएच कार्यक्रम अपने दूसरे चरण में प्रवेश कर चुका है, पांच राज्यों में आरसीएच-1 (1997-2002) के सर्वेक्षण से अनेक चीजें सामने आई हैं, पुरुषों को कार्यक्रम में शामिल न कर पाने के कारण यह कार्यक्रम 'महिला केन्द्रित' रह गया है। सर्वेक्षण से पता चला है कि स्वास्थ्य सेवायें लाभार्थियों को सही समय पर नहीं मिलती हैं; स्वास्थ्य व्यवस्था घुमन्तू जनसंख्या की जरूरतों पर ध्यान नहीं देती है; किशोर जनसंख्या को अनदेखा किया जाता है तथा महिलाओं में स्त्रीरोगों के कारण रुग्णता को कम प्राथमिकता दी जाती है जबकि गर्भनिरोधकों के पार्श्व प्रभावों और प्रसव-पश्चात पेचीदगियों का भार महिलाओ पर जारी है।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (एनपीपी 2000)

2000 में लागू की गई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति ने '2045 तक जनसंख्या को संवहनीय स्तर पर स्थिर करने' के दीर्घकालीन मकसद से अनेक उद्देश्यों और लक्ष्यों को स्वीकार किया। इनमें, गर्भनिरोधकों की अधूरी जरूरत तथा स्वास्थ्य ढांचे और कर्मियों की को पूरा करना, मूलभूत आरसीएच देखभाल के लिए समग्र सेवायें उपलब्ध कराना और वर्ष 2000 तक कुल प्रजनन दर को प्रतिस्थापन स्तर तक लाना शामिल है। नीति वर्ष 2010 तक प्राप्त करने वाले सामाजिक-जनसांख्यिकीय लक्ष्यों को भी परिभाषित करती है-जैसे, सार्वजनिक टीकाकरण को प्राप्त करना, सूचनांओं/सलाह तक पहुंच, जन्म एवं मृत्यु तथा विवाह एवं गर्भावस्था का पंजीकरण, संक्रामक बीमारियों का फैलाव रोकना, छोटे परिवार का मानक

प्रोत्साहित करना, आदि। हालांकि अंतर्राष्ट्रीय बहस (आईसीपीडी) ने भारत में जनसंख्या विमर्श को बदला है और नीति महिलाओं के प्रजनन पर केन्द्रित होने के बजाय समग्र स्वास्थ्य चिन्ताओं पर केन्द्रित है तथा 'लक्ष्य मुक्त दृष्टिकोण' की वकालत करती है, यह अब भी छिपे तौर पर लक्ष्यों का पीछा करती है और महिलाओं के प्रजनन को नियंत्रित कर जनसंख्या को 'स्थिर' करने की बात करती है। इससे भी अधिक यह खुले तौर पर राज्य जनसंख्या नीतियों में 'दो बच्चों के मानक' के लिए हतोत्साहनों और प्रोत्साहनों की बात करती है और इस तरह महिलाओं और बच्चों के अधिकारों का उल्लंघन करती है। जैसा कि अध्ययन बताते हैं, इस मानक की कुछ शाखायें महिलाओं और हाशिये पर पड़े समूहों पर पूरा बोझ डाल देते हैं जिससे लिंग अनुपात घटता और एसएसए बढ़ता है, लड़कियों को गोद लेने के लिए देने का रुझान बढ़ता है और महिलाओं की राजनीति भागीदारी में कमी आती है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति (एनएचपी 2002)

1983 की पुरानी नीति पर आधारित नई नीति, कमी वाले क्षेत्रों में नई सुविधायें बनाने और वर्तमान सुविधाओं को सुधारने द्वारा स्वास्थ्य सेवाओं तक सभी सामुदायिक समूहों और सभी क्षेत्रों में इसकी पहुंच बढ़ाने की बात करती है। यह स्वीकार करते हुये कि महिलायें और दूसरे 'अल्प सुविधाप्राप्त' तबके स्वास्थ्यरक्षा तक खराब पहुंच से सर्वाधिक प्रभावित हैं यह मूलभूत सेवाओं तक ऐसे समूहों की पहुंच बढ़ाने को लक्ष्य करती है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि केन्द्र सरकार महिलाओं के स्वास्थ्य को लक्ष्य करने वाले कार्यक्रमों को पैसा देना उच्च प्राथमिकता बताती है। नीति कई समयबद्ध उद्देश्य सामने रखती है जिनमें एमएमआर एवं आईएमआर को घटाना, टीबी और मलेरिया से होने वाली मौतों को घटाना तथा वर्ष 2010 तक एचआईवी/एड्स की वृद्धि शून्य करना शामिल है।

राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण एवं रोकथाम नीति (एनएसीपी 2002)

पहले 1986 में शुरू की गई नई नीति एचआईवी/एड्स फैलाव को थामने और संक्रमित लोगों की बीमारी के प्रभाव को आम जनसंख्या के स्वास्थ्य और सामाजिक बेहतरी पर पड़ने

से रोकने को लक्षित है। यह गौर करती है कि 'जेंडर भेदभाव एचआईवी संक्रमण के फैलाव के लिए जिम्मेदार है' और गर्भावस्था एवं शिशुजन्म मामलों में निर्णय के लिए एचआईवी संक्रमित महिलाओं के अधिकार संरक्षण का विशेष उल्लेख करती है। सरकारी कार्यक्रम एचआईवी/एड्स संक्रमित महिलाओं की पीड़ा और दुविधा के प्रति मौन है जिनको अक्सर उनके अधिकारों (आवास, देखभाल और पारिवारिक संपत्ति) से वंचित या बेदखल कर दिया जाता है। जल्दी विधवा होने वाली इन महिलाओं को परिवार के बाहर कोई सहायता और समर्थन व्यवस्था न होने के कारण सामाजिक समर्थन और कानूनी संरक्षण से वंचित होना पड़ता है। क्रियान्वयन कार्यक्रम महिलाओं की चिन्ता को अनदेखा करते हैं और गर्भनिरोध उपायों के रास्ते में आने वाली बाधाओं को हल करने की दिशा में प्रयास नहीं करते हैं।

महिला सशक्तीकरण के लिए राष्ट्रीय नीति (एनपीईडब्लू 2001)

यह महिला स्वास्थ्य के प्रति समग्र दृष्टिकोण का सुझाव देती है जिसमें पोषण और स्वास्थ्य सेवायें शामिल हैं जिनको जीवन के सभी चरणों में महिलाओं और लड़कियों की आवश्यकताओं के अनुरूप लागू करने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। यह स्वास्थ्यरक्षा तक महिलाओं की समान पहुंच, महिलाओं और कन्या शिशु के प्रति सभी प्रकार की हिंसा को समाप्त करने, सभी स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण तथा कैरियर एवं व्यावसायिक शिक्षा, समान मजदूरी, पेशागत स्वास्थ्य एवं सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा एवं सार्वजनिक पद देने के प्रति भी प्रतिबद्धता प्रकट करता है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम 2005)

खराब स्वास्थ्य संकेतकों वाले 18 राज्यों में शुरू किया गया यह मिशन ग्रामीण गरीबों के लिए समग्र प्राथमिक स्वास्थ्यरक्षा पर जोर देता है। मिशन से इन 18 राज्यों में प्रभावी स्वास्थ्य रक्षा सुविधायें और ग्रामीण जनता को सर्वव्यापी पहुंच देने की आशा है। दस्तावेज द्वारा सीएचसी में शामिल सभी 'सुनिश्चित सेवाओं' को उपलबध कराना प्रमुख जोर देने वाले क्षेत्रों में रखा गया है। इनमें, सभी राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों और सभी समर्थन सेवाओं के अलावा सर्जरी, चिकित्सा, प्रसूति, स्त्रीरोग और बाल चिकित्सा में परंपरागत और आपात देखभाल को पूरा करने तथा सीएचसी स्तर पर मजबूत करना शामिल है। यह सभी प्रयास, अब तक 'सभी को स्वास्थ्य' प्रदान करने में असफल रहे ऊर्ध्वाधर कार्यक्रमों को मजबूत करने के बजाय विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रमों के बीच क्षैतिज संपर्क स्थापित करने और समग्र प्राथमिक

स्वास्थ्यरक्षा प्रदान करने के लिए हैं।

एनपीईडब्लू 2001 घटते लिंग अनुपात की समस्या की पहचान करते हुये इसे जेंडर भेदभाव के रूप में स्वीकार करता है और महिलाओं की औसत संख्या के बजाय माइक्रो स्तर पर जन्म, मृत्यु और विवाह आंकड़ों की जरूरत बताता है। पर, यह नीति जनसंख्या को स्थिर करने की जरूरत को स्वीकार करती है जैसा एनपीपी 2000 मे कहा गया था। दूसरी ओर न एनपीपी 2000 और न एनएचपी 2001 पिछले कई दशकों से लगातार घटते महिला-पुरुष लिंग अनुपात पर कोई चिन्ता व्यक्त करते हैं।

न एनपीपी 2000 और न एनएचपी 2001 महिलाओं और कन्याओं के विरुद्ध हिंसा के मामले को उठाते हैं। महिलाओं के स्वास्थ्य, प्रजनन स्वास्थ्य और हिंसा के बीच संबंधों की भी इन दोनों दस्तावेजों में चर्चा नहीं है। एनपीईडब्लू 2001, 'महिलाओं के विरुद्ध मानसिक और शारीरिक हिंसा, चाहे वह घरेलू स्तर पर हो या सामाजिक स्तर पर' मिटाने के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त करता है, जिसमें 'परंपराओं, प्रथाओं या स्वीकार व्यवहारों' द्वारा हो रही हिंसा भी शामिल है। इसके लिये वह रोकथाम, पुनर्वासन और दंड देने वाले संस्थानों और व्यवस्थाओं के सृजन की बात करता है।

गड़बड़ी के तौर पर मानसिक स्वास्थ्य को जीवन की गुणवत्ता गंभीरता से प्रभावित करने को स्वीकार करने वाला एनएचपी 2001 प्रारूप महिलाओं की विशिष्ट मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं को स्वीकार नहीं करता न यह मदद लेने वाली महिलाओं को प्रोत्साहित करने की कोई रणनीति ही प्रस्तुत करता है। एनपीईडब्लू 2001 और एनपीपी 2000 महिलाओं की मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का कोई उल्लेख नहीं करते और तीनों दस्तावेजों मे से कोई भी महिलाओं के विरुद्ध मानसिक स्वास्थ्य कानून के दुरुपयोग की बात करता है।

एनएचपी 2001 प्रारूप कुपोषण का कोई उल्लेख नहीं करता या मामले से निबटने के लिए रणनीतियों और हस्तक्षेपों का कोई सुझाव नहीं देता है। एनपीईडब्लू 2001 गर्भावस्था और स्तनपान कराने वाली विशिष्ट महिलाओं को लक्षित करता है।

उपरोक्त उल्लिखित दस्तावेजों में से कोई भी वृद्ध होती महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याओं और उनको हल करने के तरीके पर बात नहीं करता है। बस एनएचपी 2001 प्रारूप में वृद्धावस्था देखभाल के लिए आबंटन बढ़ाने की बात की गई है। हालांकि एनपीईडब्लू 2001 'वृद्ध महिलाओं' को कठिन स्थिति वाली महिलाओं के एक उप-समूह की तरह स्वीकार करता है, न यह कोई प्रतिबद्धता व्यक्त करता है और न उनकी स्वास्थ्य आवश्यकताओं का संदर्भ लेता है।

एनएचपी 2001 प्रारूप, द्वितीयक एवं तृतीयक स्तर पर निजी क्षेत्र की बढ़ती भूमिका और निदान केन्द्रों के पर्यवेक्षण, लाइसेंसिंग और नियमन की बात करता है पर इसमें नियमन व्यवस्था का कोई निश्चित प्रस्ताव नहीं है। यह प्रसव-पूर्व निदान केन्द्रों के लाइसेंस और नियमन की आवश्यकता का कोई उल्लेख नहीं करता है।

एनआरएचएम 2005 की स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं और महिला समूहों द्वारा 'नई बोतल में पुरानी शराब' कह कर आलोचना की गई है क्योंकि आरसीएच-2 सहित ग्रामीण परिवार कल्याण कार्यक्रम एनआरएचएम का मुख्य वित्तीय दस्तावेज लगता है। न केवल यह, बल्कि स्वास्थ्य कर्मी (एक्रीडियेटेड शोसल हेल्थ एक्टिविस्ट-आशा) की क्षमता के संकेतक आरसीएच से संबंधित हैं और इस बात की अधिक संभावना है कि परिवार नियोजन और आरसीएच पर अधिक जोर देने से प्राथमिक स्वास्थ्यरक्षा के दूसरे आयामों की प्रभावशीलता को नुकसान होगा।

इस प्रकार हालांकि अधिकांश नीतियां और कार्यक्रम अपनी भावना से मानव विकास, जेंडर समानता और कुछ सीमा तक समता की केन्द्रीयता पर जोर देते हैं पर लागू करने के स्तर पर उनमें गंभीर सीमायें हैं। हाल में सार्वजनिक और नीतिगत स्तर पर महिलाओं की स्वास्थ्य आवश्यकताओं और चिन्ताओं के प्रति जागरूकता और इन चिन्ताओं को हल करने के लिए वास्तव में महिलाओं की संसाधनों और सेवाओं तक पहुंच के बीच पेचीदा और विरोधी प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं।

चुनौतियां और मांगें

समग्र सूचनाओं और स्वास्थ्य की आवश्यक तथा प्रसूति देखभाल के अधिकारों तक महिलाओं की पहुंच को निरन्तर इनकार किया जा रहा है। न्यूनतम मानकों और निर्देशों को लागू करने की कानूनी व्यवस्थाओं की अनुपस्थिति में गुणवत्ता की समस्या गंभीर बनी हुई है। इसके साथ-साथ स्वास्थ्य व्यवस्था में शिकायत दूर करने का कोई प्रबन्ध न होने के कारण मूल मानवाधिकारों के उल्लंघन और गलत व्यवहार पैदा होते हैं जैसे बंध्याकरण कैम्पों में।

चूंकि स्वास्थ्य केवल 'बीमारियों से मुक्ति' नहीं बल्कि जीवन की गुणवत्ता है इसलिये स्वास्थ्य के सामाजिक निर्धारकों को सुधारने के प्रयास किये जाने चाहिये। अतः, रोजगार तक पहुंच, काम की सुरक्षा, स्कूली एवं उच्च शिक्षा, समान अवसर, लाभ और मजदूरी तथा संसाधनों तक पहुंच, आदि को बढ़ावा दिया जाना चाहिये। इसमें शामिल हैं-

◆ दो बच्चों के मानक को वापस लेना।

◆ स्वास्थ्य पर महिलाओं के अधिकार और देखभाल की गुणवत्ता।

◆ मानकों और निर्देशों के न्यूनतम पालन को सुनिश्चित करने के लिए कानूनी व्यवस्थायें उपलब्ध कराना।

◆ शिकायतें दूर करने और जवाबदेही सुनिश्चित करने की व्यवस्थायें। इनमें सार्वजनिक और निजी स्वास्थ्य सेवाओं के पर्यवेक्षण, महिलाओं के स्वास्थ्य अधिकार उल्लंघनों को रोकने के लिए दलित, आदिवासी और अन्य हाशिये वाले वर्गो की महिलाओ को शामिल करना।

◆ स्वास्थ्य के सामाजिक निर्धारकों तक महिलाओं की पहुंच सुधारने के कदम उठाना जैसे- रोजगार तक पहुंच, काम की सुरक्षा, स्कूली एवं उच्च शिक्षा, समान अवसर, लाभ और मजदूरी, परिवार और समुदाय के भीतर संसाधनों तक पहुंच।

◆ विभिन्न सामाजिक निर्धारकों तक उसकी पहुंच सुनिश्चित किये बिना महिलाओं की स्वास्थ्य तक पहुंच सुनिश्चित नहीं की जा सकती है। इसलिये ऐसे कार्यक्रम और नीतियां बनानी होंगी जो भोजन, पानी, रोजगार, आजीविका, शिक्षा, हिंसा, आदि पर गौर करें। स्वास्थ्य नीतियों

और कार्यक्रमों को स्वास्थ्य के व्यापक निर्धारकों के बीच संबंध बनाने होंगे।

◆ स्वास्थ्य, खासकर प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा पर बजट आबंटन बढ़ाया जाय; जेंडर बजट लागू हो।

◆ महिला स्वास्थ्य के लिए संसाधन आबंटन को प्राथमिकता दें तथा इसे परिवार नियोजन आदि तक सीमित न करें।

◆ हिंसा को सार्वजनिक स्वास्थ्य मुद्दे की तरह स्वीकार किया जाय और इसके लिए गुणवत्तापूर्ण सेवायें दी जांय।

◆ जबरिया बंध्याकरण और महिलाओं पर तकनीकों की बेरोकटोक जांचों को रोकें जैसे गर्भनिरोधक, प्रजनन सहायक तकनीकें, लिंग के आधार पर गर्भपात, आदि।

◆ सभी महिलाओं; खासकर गरीबों, आदिवासियों, दलितों और हाशिये वाले वर्गों की महिलाओं की गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच सुनिश्चित करें।

भाग 5

दवायें और महिलाओं का स्वास्थ्य

जो महिलायें और पुरुष विशेषाधिकार वाली स्थिति में हैं, यानी जिनके स्वास्थ्य के सामाजिक निर्धारिक ठीक हैं, वे सुनिश्चित करते हैं कि बीमारी नहीं होती और अगर होती भी है तो उनके पास खरीदने की इतनी क्षमता है कि वे अच्छी गुणवत्ता वाली चिकित्सा सेवा तक पहुंच सुनिश्चित कर सकते हैं और ज्यादा परेशान नहीं होते। दुर्भाग्य से अधिकांश महिलाओं की स्थिति ऐसी नहीं है। उनको बीमारी, भेदभाव तथा स्वास्थ्यरक्षा और दवाओं तक पहुंच की समस्या का सामना करना पड़ता है। कीमत और प्रभावी इलाज के विचार से दवायें स्वास्थ्यरक्षा का एक महत्वपूर्ण आयाम हैं।

भारत में अनेक स्वास्थ्य व्यवस्थाओं का अस्तित्व है। कुछ का विकास ऐतिहासिक रूप से लगभग 5000 सालों में हुआ जैसे आयुर्वेद, कुछ बाद में विकसित हुई जैसे सिद्ध और यूनानी तथा कुछ और बाद पिछली शताब्दी में जैसे होम्योपैथी।

एलोपैथिक दवाइयां पश्चिमी चिकित्सा माडल में विकसित हुई जिसका दृष्टिकोण लघुकरणवादी (रिडक्शनिस्ट) रहा है; पहले यह रसायन आधारित थीं, बाद में औषधीय पोधों पर आधारित हुई और अब जैवतकनीक की तरफ बढ़ रही है।

एलोपैथिक दवाइयां गहराई से पश्चिम में, पश्चिमी विज्ञान में और शोध, उत्पादन एवं व्यापार की कार्पोरेट दुनिया में गहराई से जुड़ी हैं। इसी कारण इनका वर्तमान चिकित्सा देखभाल की प्रकृति पर अत्यन्त गंभीर नियंत्रण है जो बढ़ते व्यापारीकरण, एलोपैथीकरण और स्वास्थ्यरक्षा नीतियों तथा कार्यक्रमें के दवाकरण के रूप में सामने आ रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के पूर्व महानिदेशक और 'समग्र प्राथमिक स्वास्थ्यरक्षा' पर अलमाअता चार्टर, 1978 के मुख्य सर्जक डा. हैफडेन मैलर ने 'चिकित्सा औद्योगिक गठजोड़' की इस प्रगति और नियंत्रण को नव-उपनिवेशवाद कहा था।

इस नव-उपनिवेशवाद और दवाओं के मुद्दे की वैश्विक प्रकृति तथा विश्व व्यापार संगठन

खासकर ट्रिप्स के अंतर्गत बढ़ते आर्थिक वैश्वीकरण, द्विपक्षीय और बहुपक्षीय समझौतों ने गरीबों खासकर महिलाओं एवं बच्चों को सर्वाधिक नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। ऐसा इसलिये क्योंकि दवाओं की जरूरत पेचीदगियों को रोकने और पीड़ा को दूर करने के लिए है पर वे न पहुंच में हैं न खरीदी जा सकती हैं तथा स्वास्थ्य नष्ट करने वाली नीतिगत पहलों के कारण सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था धराशाई हो गई है।

पिछले वर्षो में रसायन मंत्रालय द्वारा 1978, 1986, 1994 (2002) की दवा नीतियां और 2005 का दवा नीति प्रारूप तैयार किया गया है। रसायन मंत्रालय, दवा नीतियां तैयार करने खासकर उनके उत्पादन, व्यापार और मूल्य पक्ष के बारे में नीतियां तैयार करने की केन्द्रीय एजेंसी है।

स्वास्थ्य मंत्रालय आवश्यक दवा सूची, राष्ट्रीय दवा फार्मूलरी तथा विभिन्न राष्ट्रीय कार्यक्रमों जैसे टीबी, मलेरिया, एचआईवी/एड्स के लिए मानक चिकित्सा निदर्शिका तैयार करने के साथ सुरक्षा और गुणवत्ता के मामले देखता है।

वाणिज्य मंत्रालय पेटेन्ट और ट्रिप्स के मुद्दे देखता है जिनका प्रभाव भविष्य में 'पहुंच' और 'लागत' पर पड़ेगा।

दवायें और महिला स्वास्थ्य संबंधी चिन्तायें

आवश्यक दवाओं तक पहुंच

विश्व स्वास्थ्य संगठन की आवश्यक दवा सूची सबसे पहले 1977 में तैयार की गई। पिछले सालों में इसे कई बार बदला गया और इसी तरह आवश्यक दवाओं की राष्ट्रीय सूची को पहले 1996 में और बाद में 2003 में बदला गया।

दुर्भाग्य से केवल आवश्यक दवा सूची बनाना यह सुनिश्चित नहीं करता कि इन आवश्यक दवाओं का उत्पादन और वितरण प्राथमिकता के तौर पर किया जायगा, खासकर उन दवाओं का जिनकी महिलाओं के आम स्वास्थ्य तथा प्रजनन स्वास्थ्य के लिए जरूरत होती है।

प्रजनन स्वास्थ्य, मातृत्व स्वास्थ्य और मातृत्व मृत्यु को घटाने वाली आवश्यक दवाओं की खास जरूरत होती है, जो दुनिया भर में सर्वाधिक है।

मातृत्व मौतों के ज्ञात कारणों जैसे- रक्तस्राव, एनीमिया, इक्लैम्पिसिया, संक्रमण, पपर्यूरल सेप्सिस, असुरक्षित गर्भपात, बाधित प्रसव, आदि के लिए महिलाओं को ऐसी दवायें चाहिये जो उनकी पहुंच में तथा सस्ती हों। उदाहरण के लिए खून की कमी वाली महिलाओं को सिर्फ सस्ती फेरस सल्फेट (आयरन) गोलियां चाहिये; पर बाजार में इनकी जगह आयरन के मंहगे मिश्रण बिक रहे हैं जिनमें से अनेक में आयरन की मात्रा औषधीय खूराक से कम है।

यदि आपातकालीन प्रसूति देखभाल में-प्रसव-पूर्व रक्तस्राव, प्रसव-पश्चात रक्तस्राव, बाधित प्रसव आदि में महिलाओं का जीवन बचाना है तो खून, आक्सीजन, एनेस्थीसिया की जरूरत है। ड्रग्स एंड कास्मोटिक्स एक्ट तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन की आवश्यक दवा सूची के अंतर्गत रक्त, रक्त उत्पाद और आक्सीजन आवश्यक दवाये हैं और इसी तरह सुरक्षित एनेस्थीसिया दवायें हैं, जिनको एनेस्थीसिया के प्रयोग में प्रशिक्षित कुशल चिकित्सा कर्मियों द्वारा प्रयोग किया जा सकता है, खासकर परिधीय सीएचसी और जिला अस्पतालों में।

गर्भावस्था में विषाक्तता वाली स्थितियों जैसे इक्लैम्पिसिया, प्री इक्लैम्पिसिक टाक्सीमिया (पेट) और उच्च रक्तचाप में उच्च रक्तचाप-रोधी, सुरक्षात्मक तथा अन्य उपयुक्त दवाओं की जरूरत होती है।

पपर्यूरल सेप्सिस और दूसरे संक्रमणों जैसे प्रजनन तंत्र संक्रमण, लैंगिक प्रसारण रोगों (एसटीडी), असुरक्षित गर्भपात के लिए एंटीबायोटिक की जरूरत होती है।

गर्भावस्था के पहले, उसके दौरान तथा बाद में अन्य संक्रमणों जैसे मलेरिया, टीबी, हेपेटाइटिस, टाइफाइड, कालाजार आदि खास इलाजों की जरूरत होती है जिसके लिए खास खूराकों, खास अंतराल और खास समय तक दवा देनी होती है।

यह न केवल प्रभावी इलाज बल्कि यह सुनिश्चित करने के लिए भी जरूरी है कि ऐंटीबायोटिकों और माइक्रोबीसाइड्स के अनावश्यक तथा अनाप-शनाप प्रयोग से दवाओं के प्रति प्रतिरोध न विकसित हो।

गर्भनिरोधक

महिलाओं को सुरक्षित और प्रभावी गर्भनिरोधक की जरूरत है जिसमें बलात्कार आदि के बाद दिये जाने वाले आपातकालीन गर्भनिरोधक (मुखीय गर्भनिरोधक की चार गोलियां) भी शामिल हैं ताकि अनिच्छित गर्भावस्था और असुरक्षित गर्भपात से बचा जा सके। सुरक्षित एवं प्रभावी विधियों, प्रजनन जागरूकता, वनस्पति-आधारित गर्भनिरोधकों, और अन्य विधियों के बारे में महिलाओं को सूचनायें होनी चाहिये। चिकित्सा तकनीक और दवाओं के सुरक्षा आयामों के बारे में पूर्वाग्रह रहित जानकारी तथा 'पसंद' के तौर पर उपलब्ध अन्य विकल्पों का ज्ञान महिलाओं को इस तरह संप्रेषित किया जाना चाहिये कि वह उनकी समझ में आ सके।

जिन महिलाओं को मधुमेह या उच्च रक्तचाप है अथवा वे मानसिक विकृतियों जैसे अवसाद, बाईपोलर डिसआर्डर, एमडीपी, शीजोफ्रेनिया या दमा से पीड़ित हैं उनको लंबे समय तक दवा की जरूरत होती है। ये दवायें उनकी खरीद शक्ति की सीमा में होनी चाहिये।

सुरक्षा

महिलाओं के लिए दवाओं के सुरक्षा आयाम महत्वपूर्ण हैं। न केवल इसलिये कि चयापचय के बाद दवायें उनके जीवन और किडनी पर असर डाल सकती हैं बल्कि गर्भावस्था में लिये जाने पर वे अजन्मे बच्चे को भी प्रभावित कर सकती हैं। पहले से कुपोषित, कम भार वाली, हेपेटाइटिस या उच्चरक्तचाप की शिकार, किडनी को प्रभावित करने वाले मूत्र तंत्र संक्रमणों का शिकार महिलाओं पर स्पष्टतः किडनी में चयापचित

होने वाली दवाओं का नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। इन दवाओं से बचा जाना और उनके सुरक्षित विकल्पों का प्रयोग किया जाना चाहिये।

दवाओं के टिरैटोजेनिक प्रभावों के बारे में अज्ञान या दवायें लिखते समय गर्भावस्था के बारे में अज्ञान, के कारण ऐसी दवायें दी जा सकती हैं जो गर्भावस्था में असुरक्षित मानी जाती हैं या मां और अजन्मे बच्चे के लिए असुरक्षित होती हैं। इसी प्रकार स्तनपान कराने वाली मां को दी जाने वाली कुछ दवायें स्तनपान करने वाले बच्चे पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती हैं।

पिछले वर्षो में 76 से अधिक खतरनाक और अनावश्यक दवाइयों को दवा नियंत्रण अधिकारियों द्वारा प्रतिबंधित किया जा चुका है और कुछ पर जनहित याचिकाओं के माध्यम से ड्रग एक्शन समूहों जैसे डीएएफके, एआईडीएएन, एनसीसीडीपी, आदि ने प्रतिबंध की मांग की है। इनमें से अनेक दवायें महिलाओं के लिए समान रूप से हानिकारक थीं क्योंकि वे दर्दनाशकों, खांसी के सीरपों, एंटीबायोटिकों आदि का प्रयोग करती हैं।

खरीद पाने योग्य

चूंकि महिलाओं का संसाधनों पर नियंत्रण नहीं होता है इसलिये भोजन तक के मामले में वे सबसे आखिर में और सबसे कम खाने वाली होती हैं। जहां दवायें और चिकित्सा देखभाल खरीदने में पैसा शामिल होता है वहां अक्सर इसे परिवार द्वारा या स्वयं उनके द्वारा ही मना कर दिया जाता है; खासकर तब जब सार्वजनिक चिकित्सा सेवा में चिकित्सा देखभाल और दवाओं के लिए तथा चिकित्सा सेवा के बढ़ते निजीकरण के कारण 'सेवा के लिए फीस' अधिक होती है। दवा नीतियों में उच्च श्रेणी देने या दवा मूल्य नियंत्रण हटाने के कारण महिलाओं को उनकी जरूरत की दवायें नहीं मिल पातीं क्योंकि वे उन्हें खरीद नहीं सकती हैं।

पूर्वाग्रह रहित दवा सूचना

दवाओं के बारे में तार्किक और सुरक्षित ढंग से मरीज/उपभोक्ता को सूचना देना समझदारी की बात है पर अक्सर ऐसा नहीं होता जिसके कारण चिकित्सकीय समस्यायें पैदा

होती हैं जो घातक भी हो सकती हैं। महिलाओं द्वारा कुछ दवाओं के बारे में सूचना मांगना महत्वपूर्ण हो सकता है। जैसे खाली पेट खाये जाने पर मलेरिया की दवा क्लोरोक्वीन और मेट्रोनाइडाजोल (एंटी-अमीबा दवा) मिचली और उल्टी का कारण बन सकते हैं जो गर्भवस्था की मिचली को और गंभीर बना सकते हैं। इसी तरह खाली पेट लिये जाने पर कुछ दर्दनाशक जैसे एस्प्रिन, पेप्टिक अल्सर की समस्या होने पर या डेंगू हेमरेजिक बुखार या रक्तस्राव समस्या होने पर (चाहे यह गर्भावस्था संबंधी, प्रसव-पूर्व या प्रसव-पश्चात रक्तस्राव हो, अपूर्ण गर्भपात के कारण रक्तस्राव हो या अधिक मासिक धर्म यानी मेनोरेजिया) इनसे भारी रक्तस्राव हो सकता है।

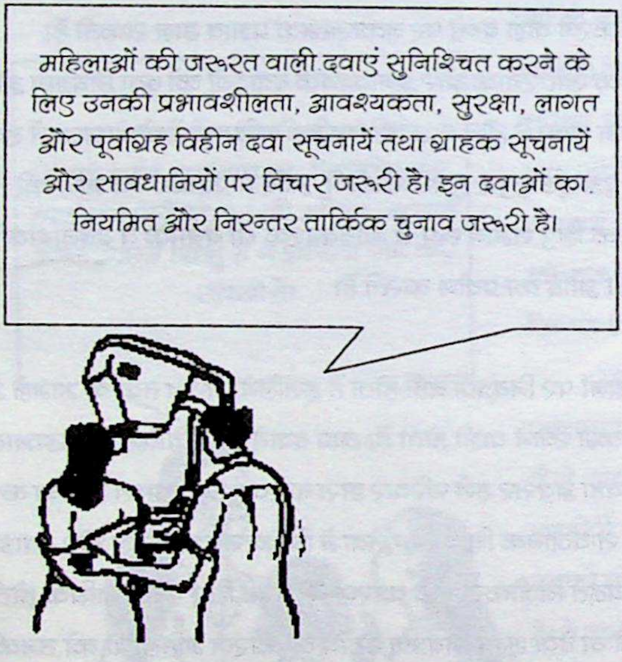

एलर्जी और दमा की कुछ दवायें तथा ट्रैंक्वेलाइजर और सिडेटिव सुस्ती पैदा करते हैं जो फैक्ट्रियों में मशीनों पर काम करने वाली महिलाओं या साइकिल स्कूटर चलाने वाली महिलाओं के लिए खतरनाक हो सकती हैं।

कुछ दवायें वृद्ध महिलाओं (और पुरुषों) को नहीं दी जानी चाहिये। इसी तरह कुछ दवायें बच्चों (लड़कियों और लड़कों) को नहीं दी जानी चाहिये जैसे बेबी एस्प्रिन, टेट्रासाइक्लिन, निमीसुलाइड।

इंजेक्शन से दिये जाने वाले हार्मोनल गर्भनिरोधक उच्च रक्तचाप, मधुमेह, हेपेटाइटिस, थ्राम्बोइम्बेलिक स्थितियों (शिराओं में थक्के) से पीड़ित और गर्भवती महिलाओं को नहीं दिये जाने चाहिये।

पूर्वाग्रह रहित दवा सूचनाओं का अर्थ विभिन्न ब्रांड नामों से बिक रही समान जेनेरिक दवाओं के तुलनात्मक दाम बताना भी है। कभी कभी पूर्वाग्रह रहित सूचना उपलब्ध कराने के लिए सूचनाओं को एकत्र कर यह सुनिश्चित करने के लिए उनका विश्लेषण करना होता है कि दवाओं का सुरक्षित प्रयोग किया जा सके। इसके लिए दवा लिखने के व्यवहारों तथा दवा उपभोग के व्यवहारों का अध्ययन जरूरी होता है। बिक्री के बाद सर्वेक्षण आमतौर से नहीं किया जाता पर यह कुछ खास किस्म की नई दवाओं के लिए जरूरी है जैसे गर्भपात-रोधी दवा, आरयू 486।

मीसोप्रेस्टाल को बाजार में दूकानों पर बेचा जाता है जिसे 7 हफ्ते से अधिक गर्भावस्था वाली और 5-6 ग्राम हीमोग्लोबिन वाली महिलाओं द्वारा भी लिया जा सकता है। असफलता की 8 प्रतिशत दर यानी अधूरे गर्भपात की स्थिति में महिलाओं को गंभीर रक्तस्राव हो सकता है, जो बहुत अधिक होने या पहले से खून की कमी से ग्रस्त महिलाओं में घातक भी हो सकता है।

आजकल बहुत सी महिलायें मर जाती हैं या भयंकर कष्ट झेलती हैं क्योंकि उनको जिस आवश्यक जीवनरक्षक दवा की तुरन्त जरूरत होती है वह नहीं मिल पाती या वे उसे खरीद नहीं पाती। कुछ को प्रयोग की जाने वाली दवाओं के गंभीर पार्श्व प्रभावों या विपरीत प्रतिक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। कुछ मामलों में टेरेटोजेनेसिस से बचा जा सकता है। दुर्भाग्य से अजन्मे बच्चों को दवाओं के टेरेटोजेनिक प्रभाव का सामना करना पड़ता है और उनकी माताओं को भी जिन पर इलाज की जिम्मेदारी है और जिनको इसका आरोप झेलना पड़ता है।

वहन करने और पहुंच की सीमा में प्रशिक्षित और कुशल स्वास्थ्य कर्मी, दवाओं के तार्किक प्रयोग के लिए सही निदान करने वाली निदान सुविधायें, इनको सुनिश्चित करने तथा उपयुक्त पहुंच वाला स्वास्थ्य ढांचा और स्वास्थ्यरक्षा सुविधायें और इसे सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त स्वास्थ्य बजट होना चाहिये।

आज हमारी स्वास्थ्य समस्यायें बढ़ रही हैं और शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों पर बीमारियों का दुहरा और तिहरा भार है। इसके साथ ही स्वास्थ्य सेवाओं के बढ़ते निजीकरण का रास्ता ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र से स्पष्ट है। स्वतः उदारीकरण की ओर तथा द्विपक्षीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संधियों के दौर में आर्थिक व्यापारिक नीतियों के कारण

कार्पोरेटीकरण की ओर परिवर्तन हो रहे हैं जो असाधारण असमानतायें और विषमतायें पैदा कर रहे हैं। इसका परिणाम न केवल ऐसी आर्थिक प्रगति में होता है जो मूलतः 'रोजगारहीन वृद्धि' है बल्कि करोड़ों लोगों को उन रोजगारों से उखाड़ कर फेंक रही है जो उनको आत्म सम्मान और शान देते थे। आत्महत्यायें और शहरों के किनारे बसी झुग्गी-झोपड़ियों में संघर्ष करने और किसी तरह जीवन काटने के लिए विस्थापन आज आम बात है जहां महिलाओं को उपयुक्त मात्रा में साफ पानी, शौचालय के लिए न्यूनतम निजता, धूप और बरसात से कोई सुरक्षा नहीं मिलती। यह माहौल तीव्र और दीर्घकालीन बीमारियों के लिए परिस्थितियां तैयार करता है जो न केवल महिलाओं बल्कि बच्चों और उनके परिवार को प्रभावित करती है, जिनकी खरीदने की शक्ति न होने के कारण वे निजी चिकित्सा सेवायें और दवायें नहीं खरीद पाते हैं।

जन स्वास्थ्य अभियान
राष्ट्रीय समन्वयक समिति

सी/ओ साथी-चेहत, 3 एवं 4, अमन टेरेस
प्लाट नं. 140, धनुकर कॉलोनी कोठरूद
पुणे - 411029
फोन : +91-20-25451413 / 25452325
ई-मेल : cehatpun@vsnl.com
सी-ओ देहली विज्ञान फोरम, डी-158, लोवर
ग्राउण्ड फ्लोर, साकेत, न्यू देहली-110017
फोन : +91-11-26524324 / 26862716
ई-मेल : ctddsf@vsnl.com